

पैरोकार

साहित्य, शिक्षा, कला व संस्कृति की त्रैमासिकी

वर्ष : 11 • अंक : 2 • अप्रैल-जून, 2022 • RNI-WBHN/2012/44200



वर्ष 11 • अंक 2 • अप्रैल-जून 2022
अंतरराष्ट्रीय पीयर रिव्यूड पत्रिका

प्रधान संपादक : अनवर हुसैन	
संपादकीय सलाहकार : डॉ. सुनील कुमार 'सुमन'	
प्रबंध संपादक : मनोज कुमार	
कार्यकारी संपादक : डॉ. मोहम्मद आसिफ आलम	
सहायक संपादक : डॉ. ललित कुमार	
अंतरराष्ट्रीय सदस्य :	
डॉ. मोरवे रोशन के : यूनिवर्सिटी ऑफ लॉड्ज, पोलैंड और बांगोर यूनिवर्सिटी, यूके	
पीयर रिव्यूड टीम :	
प्रो. एमजे वारसी : अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़, डॉ. श्रीधरम : आरएसडी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय,	
डॉ. संजय जायसवाल : विद्यासागर विश्वविद्यालय, मेदिनीपुर, प. बंगाल, डॉ. उमा यादव : महात्मा गांधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी, डॉ. अनीश कुमार : द पर्सपेरिटिव इंटरनेशनल जर्नल ऑफ सोशल साइंस एंड ह्युमैनिटीज	
संपादक मंडल : सेराज खान बातिश, डॉ. विवेक साव, डॉ. श्रीनिवास सिंह यादव, डॉ. चक्रधर प्रधान, नारायण दास, ब्रजेश प्रसाद, सद्वाम हुसैन	
ठाईप सेटिंग : रामजी पंडित	

संपादकीय कार्यालय

स्वास्थ्यक अपार्टमेंट

पैरोकार मीडिया प्रोडक्शन प्रा.लि.

पीरतला, आगरपाड़ा, कोलकाता-700109

मोबाइल : 9831674489

E-mail ID - pairokarpublication@gmail.com

m9903849713@gmail.com

स्वत्वाधिकारी, प्रकाशक व मुद्रक रोजायदा खातून द्वारा स्वास्थ्यक अपार्टमेंट, पीरतला, आगरपाड़ा, कोलकाता-700109 से प्रकाशित व हाइटेक कम्प्यूनिकेशन्स एण्ड कन्सल्टेन्स, पीरतला, आगरपाड़ा, कोलकाता-700109 से मुद्रित,

संपादक : रोजायदा खातून

पत्रिका मे प्रकाशित रचनाओं/लेखों की मौलिकता का दायित्व स्वयं रचनाकारों का है, उससे सम्पादक व प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं है। किसी तरह का विवाद कोलकाता न्याय क्षेत्र के अधीन ही होगा।

विषय सूची

संपादकीय	2
— अनवर हुसैन	
संवेदनशीलता का संकट और लोक साहित्य की भूमिका	3
— डॉ. ऋषिभूषण चौधे	
नारीवाद के संवैधानिक आयाम	7
— डॉ. चन्दन कुमार	
ऑनलाइन शिक्षण माध्यम एवं छात्रों की अभिरुचि	10
— डॉ. चन्दन सिंह	
सांस्कृतिक राष्ट्रीयता बनाम सांस्कृतिक राष्ट्रवाद	21
— डॉ. मो. आसिफ आलम	
कोरोना कालीन कहानियों की पड़ताल	26
— अजय चौधरी	
समाज के हर रंग से वाकिफ : व्यंग्य सम्राट हरिशंकर ...	32
— विनीता तिवारी	
निराला के काव्य में मानवीय चेतना	35
— नगीना लाल दास	
हिन्दी आलोचना : स्त्री, स्त्रीवाद भूमंडलीकरण	43
— नीलू गुप्ता	
लोक संवेदना के अप्रतिम कवि : राकेश 'कबीर'	51
— ब्रजेश प्रसाद	
कविता :	
‘सबसे नीच काम’	54
—विपुल कुमार रवि	

संपादन और प्रबंधन के सभी पद अवैतनिक

मूल्य एक प्रति- रु. 25/- वार्षिक सहयोग राशि- रु. 400/-

संस्थाओं के लिए : रु. 500/-, इस अंक का मूल्य रु. 50/-

संपादकीय

डिजिटल मीडिया के लिए लक्षण रेखा तय करने की कवायद

सरकार डिजिटल मीडिया को नियंत्रित करना चाहती है। जोरदार विरोध के चलते सरकार का पहला प्रयास सफल नहीं हो पाया था। 2019 में पहली बार केंद्र सरकार ने डिजिटल मीडिया पर लगाम कसने के लिए जब कानून बनाने की दिशा में कदम उठाया था तो जोरदार विरोध हुआ। अभिव्यक्ति की आजादी पर अंकुश लगाने का आरोप लगाते हुए बुद्धिजीवियों ने जब कड़ा विरोध जताया तो सरकार पीछे हट गई। लेकिन इस बार सरकार डिजिटल मीडिया पर लगाम कसने को लेकर गंभीर दिख रही है। खबर है कि डिजिटल मीडिया के लिए लक्षण रेखा तय करने के लिए सरकार जल्द ही नया कानून लाने पर विचार कर रही है। नया कानून में डिजिटल माध्यम के लिए भी पंजीकरण कराना अनिवार्य होगा।

देश में पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन कानून के दायरे में आता है। कोई भी समाचार पत्र या पत्रिकाएं प्रकाशित करने के लिए उसे रजिस्ट्रेशन ऑफ बुक एक्ट 1867 के तहत पंजीकृत कराना पड़ता है। जाहिर है कानूनी स्वीकृति लेकर पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित करने वालों को कानूनी नियमों का पालन करना पड़ता है। इस तरह प्रिंट मीडिया एक अनुशासन के दायरे में काम करता है। लेकिन इंटरनेट के जमाने में सोशल मीडिया और डिजिटल मीडिया के तीव्र गति से प्रसार होने के बावजूद इसके लिए कोई कायदा कानून नहीं है। इसलिए डिजिटल मीडिया बेलगाम है और इस कारण कई तरह की समस्याएं पैदा हो रही हैं।

अनवर हुसैन

अब अगर डिजिटल मीडिया के लिए भी पंजीकरण अनिवार्य करने के लिए नया कानून बनता है तो जाहिर है पुराना कानून में संशोधन होगा या उसे खत्म करना पड़ेगा। इस संबंध में जो नया कानून बनेगा उसमें प्रिंट मीडिया की तरह ही डिजिटल मीडिया को भी पंजीकरण कराना अनिवार्य होगा। इसमें अभिव्यक्ति की आजादी पर छोटे जैसी कोई बात नहीं होनी चाहिए। आज डिजिटल मीडिया जरूरत बनता जा रहा है तो इसके लिए भी कायदे कानून होना ही चाहिए। कानून बनेगा तो डिजिटल मीडिया भी अनुशासित होकर काम करेगा और इसके संचालकों को भी जवाबदेही रहेगी।

अभिव्यक्ति की आजादी का हनन बताकर इस पर फिर हायतौबा नहीं होनी चाहिए। डिजिटल मीडिया के लिए कानून बनता है तो सरकारी तौर पर वह भी मान्य होगी और प्रिंट तथा इलेक्ट्रानिक मीडिया की तरह उसे भी बराबर का सम्मान मिलेगा। वैसे भी आज प्रायः सभी छोटे-बड़े प्रिंट और इलेक्ट्रानिक मीडिया घरानों का डिजिटल संस्करण भी है। सरकार डिजिटल मीडिया को भी कानून के दायरे में लाती है तो उसे अभिव्यक्ति की आजादी पर अकुंश लगाने के के प्रयास से नहीं बल्कि व्यवस्था से जोड़कर नहीं देखा जाना चाहिए।

• • • • •

आत्म

संवेदनशीलता का संकट और लोक साहित्य की भूमिका

शोध सार :

यह दौर डिजिटल दौर है। पहले के हर दौर से एकदम अलग है— इसकी भाषिक, सामाजिक और सांस्कृतिक बुनावट। पर क्या मानवीय संवेदनशीलताएं भी इसी रफ्तार से बदल रही हैं? क्या मनुष्य पहले से अधिक असंवेदनशील हुआ है? परिचय के विस्तार का क्या यह कोई अनिवार्य साईड इफेक्ट है? क्या अब सूचना ज्ञान के साथ—साथ संवेदनशीलता का भी स्थान लेती जा रही है? या क्या ये चिंताएँ व निरीक्षण केवल नये के प्रति होने वाली स्वाभाविक आशंकायें मात्र हैं? हाल के दो तीन दशकों में यानी जब से टेलिविजन और नेट युग का विस्तार तेजी से होना शुरू हुआ, अकादमिक दुनिया में अस्मिता बहस के साथ—साथ लोक साहित्य और विभिन्न लोक कला तत्वों पर नए सिरे से निगाह पड़नी भी शुरू हुई। इसका सकारात्मक असर यह हुआ कि लोक साहित्य पुनः गम्भीर अध्ययन का विषय बनाया लगभग पूरी दुनिया में। प्राथमिक से उच्च स्तर तक के पाठ्यक्रमों में लोक तत्वों व विधाओं को जोड़ा गया। नेट या डिजिटल क्रांति जिसे लोक का खतरा माना गया उसी का सहारा लेकर लोक साहित्य पर मंडरा रहे संकट को टालने की कोशिशें तेज हुई। और अपेक्षित मात्रा में लोक नेट पर आ गया। पर क्या घटती मानवीय संवेदनशीलता की रफ्तार को लोक साहित्य के प्रसार से कम किया जा सकता है? अक्सर लोक साहित्य के प्रति भी एक रोमानी भाव देखने को मिलता है। तर्क और वास्तविक से परे अथवा दूर रहकर, किसी गहरे अनुभूतिजन्य संकट पर सार्थक चिंतन नहीं किया जा सकता। और ना ही आकांक्षित परिणाम को हासिल किया जा सकता है।

डॉ. ऋषिभूषण चौबे

हिन्दी विभाग

प्रेसिडेंसी विश्वविद्यालय, कोलकाता

भारत की भावनात्मक—राष्ट्रीय—अखंडता एवं एकता का सवाल हो या विश्व शांति एवं मैत्री की विराट कामना का प्रश्न य व्यक्ति से समूह व समष्टि की ओर चलने की नीति ही कारगर हो सकती है। यानी वैयक्तिक रुचि में परिष्कार एवं परिमार्जन जरूरी है, अंततः वैयक्तिक प्रवृत्ति ही राष्ट्रीय स्वभाव व चरित्र बनता है। संक्षेप में, लोक साहित्य की महत्ता पर भावुक व रोमानी तरीके से सोचने के बजाय प्रत्येक भाषा—संस्कृति के परम्परागत लोक—अनुभवों एवं आनंद—उत्सवों की प्रासंगिक व्याख्या करनी होगी। इसके साथ ही वर्तमान समय के अनुकूल रिवाजों को ही प्रश्रय देते हुए, लोकल एवं ग्लोबल के बीच तार्किक तालमेल बिठाने की दिशा में काम करना होगा। स्कूली शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा के स्तर तक लोक उत्सवों एवं परम्पराओं के प्रति नई पीढ़ी में संकोच व हीनता के स्थान पर खुलापन एवं तार्किक गौरव बोध विकसित करना आज के समय की एक बड़ी जरूरत है।

Key words : संवेदनशीलता, लोक—साहित्य, कला, वैशिकता, डिजिटल युग, मनुष्यता, भाषा, मशीन—कल्यार

लोक और संवेदनशीलता : आपसी नाता

व्यक्तिगत धरातल पर व्यक्ति विशेष जितना उपेक्षित और नाखुश होता है, वह अपने सामाजिक व्यवहार में भी, ऐसा ही करता देखा जा सकता है। भीतरी और वास्तविक खुशी ही व्यक्ति को सही मायने में खुश रख सकती है। आधुनिक मनोविज्ञान भी इसकी पुष्टि करता है। अपनी जड़ों से कटा व्यक्ति किसी भी अन्य

पैरोक्तार

सांस्कृतिक परिवेश को सहज अपना नहीं पाता। इससे उसके भीतर एक खास तरह की हीनताग्रंथी पनपती चली जाती है। इस ग्रंथी का असर उसके समूचे व्यवहार पर पड़ता है। एक तरह की 'अनफिटनेश' की भावना उसके भीतर मजबूत होने लगती है।

वैयक्तिक स्तर पर पनपी ऐसी मनोग्रंथी पारिवारिक स्तर से होते हुए सामुदायिक स्तर तक विकसित हो जाती है। धीरे-धीरे एक बड़ा भाषिक व सांस्कृतिक समुदाय "आउट साईडर" में तब्दील हो जाता है अथवा कर दिया जाता है। इससे सामुदायिक कलह समय बीतने के साथ-साथ राज्य व राष्ट्रीय स्वरूप ले लेता है। चूँकि यह विभाजन सूक्ष्म और भावात्मक स्तर पर अधिक घटित होता है, इसलिए कई बार समय रहते इसकी ठीक-ठीक पहचान नहीं हो पाती और एक समय बाद, स्थिति विस्फोटक करार दे दी जाती है। जब हम 'लोक' कहते हैं तो इसका सीधा संबंध एवं अर्थ आम जन की सामान्य चेतना व भावात्मक व्यवहार के रूप में प्रकट होता है। नये न्यूरो वैज्ञानिक खोज भी इस बात को प्रमाणित करते हैं कि जन-सामान्य की वर्तमान चेतना सुदूर अतीत के तन्तुओं से सहज जुड़ते हैं। दूसरे शब्दों में, हमारा चेतन-अवचेतन मन व दिमाग बड़ी सहजता से लोक परंपरा के तत्वों को ग्रहण कर लेता है। चीजें आस्वाद एवं आनंद की वस्तु बन जाती हैं। लोक साहित्य को 'पैन कीलर' कहने के पीछे ये ही तत्व व शोध प्रमाण कार्य करते हैं। लोक साहित्य की उपेक्षा के पीछे औपनिवेषिक मनोग्रंथी भी काम करती है। जो दुर्भाग्यवश अभी तक बरकरार है। इसकी वजह से आम जीवन से ही नहीं बल्कि शिक्षण व्यवस्था से भी लोक धीरे-धीरे बाहर होता गया। इससे यह संदेश भी जन-मानस में समाता गया कि लोक भाषा बोली और संस्कृति का व्यवहार आभिजात्य का

संकेत नहीं बल्कि 'गँवार' होने की पहचान है। चूँकि ठीक यही स्थिति भारतीय भाषा-संस्कृति के संदर्भ में भी आम तौर पर प्रचलित थी ही, या यह कहें कि अभी भी है ही, यह एक तरह से राष्ट्रीय मनोदशा बन गयी।

यूरोप की नकल करते हुए हमने इस बात को भी नजरअन्दाज कर दिया कि स्वयं यूरोपीय देशों में लोक-अध्ययन को उपेक्षित नहीं किया गया। बल्कि उन्नीसवीं और बीसवीं-दोनों सदियों के यूरोपीय अधिकारियों, पादरियों एवं विद्वानों ने (भारत में रहते हुए भी, भारतीय लोक साहित्य के सन्दर्भ में) इस क्षेत्र में गम्भीर कार्य किया। इस कार्य में उन्होंने देशी जानकारों की भी मदद ली। इस संदर्भ में विलियम क्रुक और पंडित राम गरीब चौबे द्वारा किया गया शोध-लेखन, एक महत्वपूर्ण उदाहरण है।

भारत लोक संस्कृतियों का देश है। कृषि आधारित जीवन भारतीयता के केंद्र में है। इसी तरह धर्म और आस्था के इर्द गिर्द ही भारतीय चित चक्कर काटता है। डिजिटल जीवन परम्परागत का निषेध नहीं है। बल्कि परम्परागत का नए ढंग से सहज उपलब्ध होना भी है। लोक संसाधनों का डिजिटलकरण लोक संवेदनाओं का सहज सार्वजनिकीकरण भी है। इससे वर्तमान डिजिटल पीढ़ी के पास लोक से जुड़ने का सहज विकल्प मौजूद हो रहा है। इससे रुचि निर्माण और रुचि संतुष्टि- दोनों स्तरों पर कारगर असर डाला जा सकता है।

संवेदना के संकट : कुछ उदाहरण

शुरुआत वर्तमान समय के सबसे शक्तिशाली राष्ट्र अमेरिका से ही करें। बिना कारण, किसी तरह के मानसिक तनाव व कुंठा से ग्रसित हो स्कूली बच्चों द्वारा फायरिंग और इससे होने वाली हत्या संबंधी खबरें आए दिन आतीं रहती हैं। इसी तरह आधुनिकतावाद और उत्तर आधुनिकता के चैम्पियन यूरोपीय देशों में

नस्लीय हमले अब भी जारी हैं। विभिन्न देशों में परस्पर युद्ध की आशंका व विषाक्त वातावरण से उत्पन्न शरणार्थी संकट के हृदयविदारक दृश्य हम हर दिन देखने को बाध्य हो चुके हैं। यहाँ सिर्फ एक दृश्य का स्मरण काफी होगा और दृश्य है। लाल टीसर्ट और ब्लू पैंट में, शरणार्थी परिवार से बिछुड़ा एक छोटा बच्चा समुन्द्र के किनारे पेट के बल मृत लेटा है। (अलन कुर्दी, सीरियाई बच्चा, 3 साल)

इन विसंगतियों से केवल पश्चिम ही नहीं अरब और एशियाई देश भी बुरी तरह से ग्रस्त हैं। हाल में, अफगानिस्तान में घटित तालीबानी सत्ता के कब्जाकरण के दृश्यों ने पूरी दुनिया को विचलित किया। स्त्रियों और बच्चों के मानवीय अधिकारों के प्रति दुनिया विशेष तौर पर चिंतित हुई। एक दृश्य का स्मरण करें। काबुल हवाई अड्डे पर भारी अफरातफरी का माहौल है। कुछ लोग हवाई जहाज के बाहर हिस्से में ही खुद को छिपाकर देश से बाहर निकल जाने की कोशिश करते हैं और उड़ान के चंद सेकेंड में हवा से जमीन पर आ गिरते हैं। इस तरह उनकी हृदय विदारक मौत हो जाती है। भारतीय संदर्भ में देखें तो कोविड महामारी के रोकथाम नाम पर अचानक देशव्यापी तालाबंदी का एलान कर दिया जाता है। नतीजा यह हुआ कि राष्ट्रीय स्तर पर रेल बस आदि आवागमन के साधन बंद हो गये। दिल्ली समेत देश के कई शहरों से लोग विशेषकर मजदूर परिवार पैदल चलकर, हजारों किलोमीटर दूर अपने घरों तक पहुँचने को मजबूर हुए। एक दृश्य रेल की पटरियों के बीचोंबीच लोगों के कटे शरीर हैं और साथ में आसपास रोटियाँ बिखरी हैं। अंधेरे में थके हारे मजदूर ट्रेन के आगमन की आहट नहीं सुन पाते हैं और उनकी जान चली जाती है। उपरोक्त सभी दृश्य पिछले तीन से पाँच वर्षों के भीतर के अनंत क्रूर और

अमानवीय दृश्यों में से केवल संकेत के लिए, यहाँ रखे गए हैं। अब जब हम सहज मानवीय संवेदनशीलता की दृष्टि से इन स्थितियों पर और इनसे उपजी प्रतिक्रियाओं पर नजर डालते हैं तो हतप्रभ होना पड़ता है। ऐसी घटनाओं को भी सामान्य, आपदाजनित, आरथाजनित और तार्किक कहने वाले लोगों की सोशल मीडिया पर भारी मौजूदगी, समाजिक व नैतिक मूल्यों में भरोसा रखने वाले लोगों को परेशानी में डालती है। समाज में अपने से अलग को 'अन्य' और 'स्वयं से कमतर' मानने की बढ़ती प्रवृत्ति देश और दुनिया को एक और गहरे संकट की ओर तेजी से घसीट रही है।

'लोक-साहित्य' पदबंध में प्रयुक्त लोक और साहित्य, दोनों शब्द एक जटिल एवं बहुआयामी अवधारणायें हैं। लोक से यहाँ आशय गाँव वाला जीवन या देशज कलासंस्कृति भर नहीं है। इसी तरह साहित्य भी यहाँ एक व्यापक अर्थ यानी कला मात्र के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। वह कला जो सौंदर्य को रचती है। मनुष्य और मनुष्यता को संवेदित करती है तथा निखारती है। यानी मशीन से आक्रांत जीवन से अलग सहज व संतुलित प्राकृतिक जीवन दृष्टि अपने व्यापक स्वरूप में यहाँ अभिव्यंजित है। यह कलाप्रियता मनुष्य को अति बौद्धिक होने से बचाती है। एक तरह से लोक साहित्य मनुष्य को बौद्धिक के साथ-साथ भाव जगत का भी प्रेमी बनाता है। भाव पक्ष का विस्तार सहानुभूति एवं सह-अनुभूति (empathy) जैसे महान मानवीय मूल्यों को बनाए रखने में मददगार साबित होता है।

कुछ संदर्भित विचार :

'हल्लीसक' शब्द का उद्गम यूनानी इलीशियन नृत्यों से ईसवीं सन् के आसपास हुआ जान पड़ता है। कृष्ण के रासनृत्य और हल्लीसक नृत्य इन दोनों की परंपरायें किसी

पैरोक्तर

समय एक दूसरे से संबद्ध हो गई थीं।' (वासुदेव शरण अग्रवाल) 'लेकिन क्या तुम जीवन में इतने गहरे पैठे हो कि उसे दूसरों के सामने खोलकर रख सको? क्या तुम जानते हो कि समय की माँग क्या है? क्या तुम्हें भविष्य की जानकारी है और क्या तुम अपने शब्दों से उस आदमी में नयी जान फूँक सकते हो, जिसे जीवन की नीचता ने ब्रष्ट और निराश कर दिया है?' (गोर्की) हम तुच्छ कल्पनाओं और दिवास्वज्ञों में रमना तथा अपने आपको कुछ विचित्र जताना चाहते हैं। कारण, जिस जीवन की हमने रचना की है, वह नीरस, बेरंग और उबाऊ है। जिस जीवन को हम कभी इतनी लगन और आवेग के साथ बदलने चले थे, उसने हमें कुचल और तोड़ डाला है। ऐसी हालत जब सामने हो, तब हम क्या करें? (गोर्की) 'मौजूदा सांस्कृतिक विस्मृति की बीमारी, स्मृति लोप के बारे में परम्परागत भारतीय चिंता से संयोजित है। यह अनुमान लगाना व्यर्थ है कि भारतीय मनोजगत विस्मृति की बीमारी से सदैव पीड़ित रहा है। (गणेश देवी) "A unique way of looking at the world disappears- Every language is a unique worldview" (GN Devy)

संक्षेप तथा सार रूप में, वर्तमान डिजिटल दौर अपनी तमाम खूबियों एवं कमियों के साथ एक बिल्कुल अलग किस्म की जीवन संस्कृति हमारे सामने उपस्थित कर चुका है। वैष्णिक मानव व नागरिक— हम सब तकनीकी रूप से बन चुके हैं। मशीन, तकनीक, साफ्टवेयर आदि चीजें अति सूक्ष्मता और व्यापकता से हमें घेर चुकी हैं। इससे परिचय और जुड़ाव बढ़ा है। लेकिन हम बौद्धिक और मशीनी जिस रफतार से हो रहे हैं उससे संवेदनशीलता का संकट भी गहराता जा रहा है। इस संकट को लोक साहित्य व कला के अन्य तमाम रूप कुछ जरूर कम कर सकते हैं। कला और सौंदर्य के

प्रति नैसर्गिक चाह ही मानवीय सभ्यता को बचाए रख सकती है। वरना मनुष्य आने वाले दशकों में अंतरिक्ष यात्रा तो आसानी से कर लेगा पर पड़ोस के किसी पीड़ित का दुःख—दर्द समझने की सहज क्षमता खो देगा और इस तरह वह स्वयं भी अंतरिक्ष में भटका हुआ एक एलियन बन कर रह जायेगा।

सहायक संदर्भ ग्रंथ :

1. भाभा के होमी , द लोकशन ऑफ कल्वर, रुटलेज, लंदन एंड, न्यूयोर्क, 2017
2. अडोरनो थियोडेर, द कल्वर इंडस्ट्री, रुटलेज, लंदन एंड न्यूयोर्क, 2012
3. पासिंघम रिचर्ड, कॉग्निटिव न्यूरो साईंस, अवेरी शोर्ट इंटरोडक्सन, ऑक्सफोर्ड, 2016
4. अंडरसन आर स्टेफन, लैंगुएजेज, अ वेरी शोर्ट इंटरोडक्सन, ऑक्सफोर्ड, 2012
5. बद्रीनारायण, लोक संस्कृति में राष्ट्रवाद, लोक भारती, प्रकाशन, 2014
6. चोमस्की नोम, न्यू हारीजन्स इन द स्टडी आफ, लैंगुएजेज एंड माईड, कैम्ब्रिज, 2000
7. उपाध्याय, रमेश, साहित्य और भूमंडलीय यथार्थ, शब्द संधान, नई दिल्ली, 2008
8. अग्रवाल, वासुदेव शरण, हर्ष चरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन (लोक—साहित्य और लोक संस्कृति, डा रामनिवास शर्मा, पंकज बुक्स, दिल्ली, 2009 से)
9. देवी गणेश, विस्मृति के बाद, (मूल पुस्तक 'आफ्टर अमनेसिया' का अनुवाद, अनुवादक—अवधेश त्रिपाठी, वाणी प्रकाशन, 2015)
10. इंटरनेट से

नारीवाद के संवैधानिक आयाम

सिमोन बोउवा ने "द सेकंड सेक्स" में कहा था—"स्त्री पैदा नहीं होती, बल्कि उसे बना दिया जाता है।"¹ तो स्पष्ट है कि बालक के विकास में सहयोगी परिवार, समाज, परिवेश, वातावरण खेल संस्थाएं, शिक्षण संस्थाएं और आगे बढ़कर सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक संस्थाएं क्रमिक रूप से लगातार भेदभाव,, उत्पीड़न, शोषण, नकारात्मकता के द्वारा बच्चे को महिला में तब्दील करने में अहम भूमिका निभाते हैं।

यह आधुनिक समाज की देन नहीं है बल्कि परंपरा द्वारा सदियों से लागू किया गया है। प्रागैतिहासिक काल में रामापीथिक्स, क्रोमैग्नन, निएडरथल, होमोसेपियंस के विकास में खानाबदोश कबीलों के केंद्र में महिलाएं आयीस परिधि में पुरुष रहा।

सभ्यताओं के विकास क्रम में मातृसत्तात्मक राज्यों में महिलाओं को पैतृक संपत्ति का अधिकार, शिक्षा का अधिकार, समानता का अधिकार रहा लेकिन सामंतवाद के दौर में विदेशी आक्रांताओं के भय से सामाजिक बुराइयों व लैंगिक भेदभाव की शुरुआत हुई। बाल विवाह, बहुविवाह, सती प्रथा, जौहर प्रथा, पर्दा प्रथा, दहेज प्रथा, बालिका हत्या आदि बुरी प्रथाओं का विकास हुआ स सम्पत्ति व राजनीति का अधिकार छीन लिया गया। मनुस्मृति, शुकनीति, भीम्पर्व, अर्थशास्त्र जैसे विधि-नियमों ने इस लैंगिक भेदभाव को और गहरा किया।

पूंजीवाद के दौर में औद्योगिक क्रांति के बाद लोकतांत्रिक राज्यों में (1776 में अमेरिका, 1789 फ्रांसीसी क्रांति, 1848 मार्क्स का घोषणा पत्र, 1917 रूसी क्रांति, 1947 भारत की आजादी) महिलाओं की समानता, स्वतंत्रता व विश्वबंधुत्व की भावना का प्रसार हुआ और विभिन्न देशों के

डॉ. चन्दन कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
राजकरीय महाविद्यालय, बाराखाल,

संत कबीर नगर

संविधान में महिलाओं को बराबरी का दर्जा मिला (बावजूद इसके आजादी के 70 सालों के बाद भी लैंगिक भेदभाव बना हुआ है।

भारतीय संविधान में महिलाओं को पुरुषों के समान ही अधिकार मिलास अनुच्छेद 14 से 18 तक समानता के अधिकार की व्याख्या की गयी है। यही नहीं राज्य को भी धर्म, जाति अथवा लिंग के आधार पर कोई भेदभाव नहीं करने का आदेश दिया गया है। अनुच्छेद 15 में ही महिलाओं को पुरुषों के समान ही आजीविका के अवसर प्राप्त करने का अधिकार देता है अनुच्छेद 23 मानव के क्रय-विक्रय पर रोक लगाता है तथा महिलाओं और बच्चों से बलपूर्वक श्रम करवाने को दण्डनीय अपराध घोषित करता है।

अनुच्छेद 39 पुरुषों और स्त्रियों को समान कार्य के लिए समान वेतन देने तथा अनुच्छेद 42 स्त्री कर्मियों के स्वास्थ्य की दशा एवं उनकी शारीरिक क्षमताओं के अनुरूप कार्य की दशाओं को तय करने का निर्देश सरकार को देता है। अनुच्छेद 40 में स्त्रियों के लिए कार्य की मानवोचित माहौल तथा प्रसूति सहायता हेतु अपबंध करने का निर्देश देता है। अनुच्छेद 40 में ही पंचायती राज संस्थाओं में 73वें एवं 74वें संशोधन द्वारा ग्राम पंचायतों तथा नगरपालिकाओं में क्रमशः अनुच्छेद 243 द्वारा आरक्षित तथा अनारक्षित वर्ग की महिलाओं हेतु 33% के आरक्षण की व्यवस्था की गई है।

संविधान के अध्याय 4 में भारतीय नागरिकों के मौलिक कर्तव्यों का उल्लेख है। इन कर्तव्यों द्वारा भी महिलाओं के सम्मान के

पैरोक्तर

विरुद्ध प्रथाओं, रीतियों, परंपराओं को त्याग ने की बात की गई।

भारतीय दण्ड संहिता 1860 की धारा 354 में स्त्री की लज्जा भंग करने को अपराध घोषित किया गया है और इसके लिए 2 वर्ष के कारावास का प्रावधान किया गया हैस इसी संहिता की धारा 509 में स्त्री की लज्जा का अनादर करने के आशय से शब्द, ध्वनि अथवा अंगविक्षेप किए जाने को दण्डनीय अपराध घोषित किया गया है। इसी प्रकार धारा 497 के अंतर्गत बलात्कार को दण्डनीय घोषित किया गया हैस इतना ही नहीं अनैतिक व्यापार (लड़कियों व महिलाओं के) निवारण अधिनियम 1956 में वेश्यावृत्ति को दण्डनीय अपराध घोषित किया गया है तथा महिलाओं का अशिष्ट रूप रूपण (निषेध) अधिनियम 1986 में महिलाओं के रूप, शरीर और आकृति को अश्लील रूप से प्रदर्शित किए जाने को दण्डनीय अपराध घोषित किया गया है।

घरेलू हिंसा से संरक्षण अधिनियम 2005 एक नया कानून बनाया गया हैस इसका उद्देश्य महिलाओं को घरेलू हिंसा से मुक्ति दिलाना तथा उन्हें उनके अधिकार दिलाने में सहायता प्रदान करना है स इस कानून में उन महिलाओं को शामिल किया गया है जो प्रताड़ित करने वाले से संबंधित हैं या संबंधित रही है तथा दोनों पक्ष एक ही घर में रहते हैं। इस अधिनियम में वास्तविक प्रताड़ना या प्रताड़ित करने की धमकी देना, दोनों सम्मिलित है स इसमें शारीरिक, यौन, मौखिक, भावनात्मक व आर्थिक शोषण सम्मिलित है। साथ, ही महिला या उसके परिवार से दहेज की गैर-कानूनी मांग को भी अधिनियम में सम्मिलित किया गया है। पत्नी को नौकरी छोड़ने के लिए या नौकरी ना करने के लिए बाध्य करना भी इसके दायरे में आता है। इस कानून के अंतर्गत महिलाओं को सुरक्षित

आवाज दिलाया गया है महिलाओं को चिकित्सा जाँच, कानूनी सहायता व सुरक्षित आश्रय प्रदान करने हेतु संरक्षण अधिकारी व गैर-सरकारी संगठनों को नियुक्त किया जाएगा संरक्षण आदेश तथा अंतरिम संरक्षण आदेश का उल्लंघन संज्ञेय व गैर-जमानती अपराध माना जाएगा इसके लिए 1 वर्ष तक की कैद या 20 हजार रूपए जुर्माना या दोनों हो सकते हैं।

2008 में महिलाओं के साथ होने एक और अपराध— तेजाब फेंकना पर कानून बनाया गया। राष्ट्रीय महिला आयोग ने उन महिलाओं के लिए जिन पर एसिड डाल दिया जाता है, एसिड पीड़ित महिला को 30 दिनों के अंदर 5 लाख रूपए राहत के रूप में मिलेंगे विधेयक में यह भी निर्देश दिया गया है कि दोषी को न्यूनतम 10 साल की सजा, जो कि आजीवन कारावास तक हो सकती है, तथा दो लाख से लेकर पाँच लाख रूपए तक जुर्माना भी किया जा सकता है।

महिलाओं के व्यवसायिक यौन शोषण और खरीद-फिरोख की रोकथाम के लिए भारत सरकार ने उज्ज्वला योजना का शुभारंभ 4 दिसंबर 2007 को किया। इस योजना द्वारा महिलाओं के उद्धार, पुनर्वास, बचाव, तथा उन्हें फिर से समाज की मुख्यधारा में शामिल किया जाता है। सीमा पार विदेश में पीड़ित, शोषित, योन दासी महिलाओं को भी स्वदेश भेजना शामिल है इस योजना में हिंदी साहित्य में दलित विमर्श और स्त्री विमर्श के आलोचक विचारक, लेखक सहानुभूति और स्वानुभूति का प्रश्न उठाते रहे हैं स यही सवाल भारतीय संसद के सामने भी है कि महिलाओं के दुःखों, संघर्षों, शोषण के इतिहास को पुरुषों द्वारा सहानुभूतिपूर्ण कानूनों के जरिए सुलझाने की कोशिश की गई है। उनका भोगा हुआ यथार्थ महिलाओं के पीड़ितों को समझाने में असफल

रहा हैस इसलिए महिलाएं अपने हित में कानून बना पाएँ व समानता के अधिकारों को संविधान की भाषा व वादे से जमीनी यथार्थ तक पहुंचने के लिए महिला आरक्षण को संसद व विधानसभा में भी लागू करने वाले विधेयक पेश होते रहे हैं। लेकिन सरकारों की दृढ़ इच्छाशक्ति के अभाव में वे सिर्फ चुनावी घोषणा पत्र और वादे बनकर रह गए हैं जबकि भारत के पड़ोसी देशों में बांग्लादेश (10%), पाकिस्तान (30%), अफगानिस्तान (27%) और नेपाल में पहले से ही आरक्षण का प्रावधान है स्वीडन (47%), अर्जेन्टीना (40%) और नॉर्वे (36%) शीर्ष महिला प्रतिनिधि वाले देश हैं। वर्तमान परिपेक्ष्य में संसद और विधानमंडलों में महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी अपर्याप्त है सकहीं ना कहीं वैश्विक लैंगिक विकास सूचकांक में भारत की निम्न रिथित जेंडर गैप कि भयावहता का संकेत देती है स यह इस आवश्यकता को भी महसूस कराती है कि राजनीतिक व्यवस्था को महिलाओं के प्रति कहीं अधिक संवेदनशील बनाना होगा। यह उनकी पर्याप्त भागीदारी के बिना संभव नहीं होगा।

संविधान द्वारा महिला सशक्तिकरण के लिए किए गए और किए जा रहे प्रयासों से वह दिन भी आएगा जब महिलाए आदर्शवादी वक्तव्यों को यथार्थ करते हुए पुरुश के समकक्ष खड़ी होंगी और समाज की घरके भीतर से नहीं चौराहे, विधानसभा व संसद से मशाल दिखाएंगी, पथप्रदर्शक बनेंगी स भूमंडलीकरण इस प्रक्रिया को पूर्ण करता प्रतीत हो रहा है स राज नायर ने "द बैकलेश" शीर्षक से लिखे लेख (द संडे ट्रिब्यून 12 नवंबर 2000) में लिखते हैं कि "शायद औरतों के लिए इतना अच्छा और मर्दों के लिए इतना बुरा वक्त कभी नहीं आया होगा। आर्थिक आजादी में औरतों के ख्यालों को मुक्त उड़ान भरने का मौका दे दिया हैस घर के भीतर आजकल अधोषित नियम यह चल रहा है।

कि तुम्हारा पैसा तो मेरा है ही, पर मेरा पैसा सिर्फ मेरा है। औरत न केवल संपूर्ण आजादी के साथ आगे निकलती जा रही है, बल्कि उसने अपने सभी दायित्वों को भी त्याग दिया है।”³

संदर्भ :

1. सिमोन द बोउवारस्त्री उपेक्षिता The Second Sex का हिंदी रूपांतर) अनुवाद डॉ० प्रभा खेतान हिंदी पॉकेट बुक्स—2004
2. भारत का भूमंडलीकरण— सं० अभय कुमार दुबे— वाणी प्रकाशन (SDS) सं०2008 नई दिल्ली
3. भारत की राजव्यवस्था— एम लक्ष्मीकांत—Mc Graw Hill— 2014

ऑनलाइन शिक्षण माध्यम एवं छात्रों की अभिरुचि

डॉ. चन्दन सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर

पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग

वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर, उत्तर प्रदेश

शोध सारांश :

“कोरोना जैसी महामारी के दौर में जब सारी दुनिया थम सी गई थी और लोगों का घर से बाहर निकलना और परम्परागत रूप से अपने काम को कर पाने मुश्किल होने लगा ऐसा महसूस हुआ मानो जिंदगी एक मोड़ पर आकर ठहर सी गई है। लॉकडाउन के कारण स्कूलों और विश्वविद्यालयों को अस्थायी रूप से बंद करना पड़ा। ऐसी विषम परिस्थिति में ऑनलाइन प्लेटफार्म के माध्यम से स्कूलों के बंद होने के बावजूद शिक्षण कार्य सुचारू रूप से चलता रहा। हालांकि पारम्परिक ऑफलाइन माध्यम (कक्षा आधारित शिक्षण) के मुकाबले ऑनलाइन माध्यम छात्रों के लिए नया था। जिस वजह से इस माध्यम के जरिए शिक्षा ग्रहण करने में छात्रों को बहुत सी समस्यों का सामना करना पड़ा। इस शोध पत्र में ऑनलाइन लर्निंग के प्रति छात्रों की अभिरुचि और उससे सम्बंधित विविध पहलुओं का अध्ययन किया गया है। शोध के लिए विश्वविद्यालय स्तर के 50 छात्रों से प्रश्नावली के माध्यम से उनकी राय ली गई है। हर शोध की तरह इस शोध की भी कुछ सीमाएं हैं इसके बावजूद भी इस शोध पत्र के माध्यम से ऑनलाइन शिक्षण को बेहतर और रुचिकर बनाने के लिए महत्वपूर्ण निष्कर्ष और सुझाव इस शोध पत्र के अंत में दिए गए हैं।”

बीज शब्द— शिक्षण, मल्टी-मीडिया, ई-लर्निंग, पाठ्यक्रम, आईसीटी, जूम एप, न्यू नार्मल

परिचय :

पारम्परिक क्लास टीचिंग के मुकाबले ऑनलाइन शिक्षण एक नया और तकनीक आधारित शिक्षण मेथड है। औपचारिक शिक्षण पर आधारित इलेक्ट्रॉनिक संसाधनों की सहायता से शिक्षण प्रणाली को ई-लर्निंग के रूप में जाना जाता है। ई-लर्निंग सूचना संचार प्रौद्योगिकियों (आईसीटी) पर आधारित शिक्षण है, जिससे लोग कभी भी और कहीं भी सीख सकते हैं। ई-लर्निंग और कुछ नहीं बल्कि शिक्षकों और छात्रों को जोड़ने के लिए प्रौद्योगिकी का उपयोग है जो शारीरिक रूप से मीलों दूर हैं। ई-लर्निंग के जरिए शिक्षण कार्य को और रुचिकर बनाने के लिए इसमें मल्टीमीडिया का भी उपयोग किया जाता है। ऑनलाइन शिक्षण के लिए आधारभूत संरचना के तौर पर इंटर्नेट और कम्प्यूटर का होना अति आवश्यक है। वर्तमान समय प्रौद्योगिकी का समय है, आज जीवन के हर क्षेत्र में सूचना तकनीक का इस्तेमाल बहुत तेजी के साथ किया जा रहा है। ऐसी स्थिति में भला शिक्षा का क्षेत्र इससे अछुता कैसे रह सकता है। ई-लर्निंग प्लेटफार्म के माध्यम से शिक्षा को तेजी के साथ लोगों तक पहुंचाना आसान

हुआ है। ऑनलाइन शिक्षण के जरिए छात्र कहीं भी और कभी भी क्लास से अपनी सुविधानुसार जुड़ सकते हैं और बिना किसी रुकावट या बाधा के अपनी शिक्षा के पूर्ण कर सकते हैं। 1993 के दौर में पहली बार ऑनलाइन शिक्षा को औपचारिक रूप से मान्यता प्रदान की गई। वर्तमान समय में ऑनलाइन शिक्षा का यह कारोबार अरबों अमेरिकी डॉलर का हो चुका है। आज शिक्षा तेजी से तकनीक आधारित होती जा रही है, स्कूल और विश्वविद्यालय ज्यादा से ज्यादा डिजिटल प्लेट फार्म और पाठ्य सामग्री का इस्तेमाल कर रहे हैं।

कोविड जैसी महामारी (न्यू नार्मल) के दौर में तकनीकी बाधाओं के बावजूद ऑनलाइन प्लेटफार्म के जरिए शिक्षण कार्य सुचारू रूप से जारी रहा। इस कार्य के लिए विविध ऑनलाइन माध्यमों जैसे कि जूम ऐप, गूगल मीट, गूगल क्लास रुम जैसे अन्य प्लेटफार्म आज के समय में प्ले स्टोर पर उपलब्ध हैं। इसमें कोई घक नहीं है कि महामारी के भयानक दौर में यदि तकनीक आधारित ये प्लेटफार्म उपलब्ध नहीं होते तो निःसंदेह शिक्षण कार्य पूर्ण रूप से प्रभावित होता। हांलाकि तकनीक से तालमेल बैठान छात्र और शिक्षक दोनों के लिए एक बड़ी चुनौती थी। अब जबकि महामारी का वह भयानक और खौफनाक दौर गुजर चुका है, रिथिति तेजी से सामान्य होने लगी है। स्कूल और विश्वविद्यालयों में पूर्व की भाँति क्लास टीचिंग पुनः शुरू हो चुकी है तो ऐसे में यह जानना ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाता है कि क्या भविष्य में ऑनलाइन शिक्षण परम्परागत शिक्षण का स्थान ले सकती है?, ऑनलाइन शिक्षण के दौरान बहुत सी तकनीकी और मानवीय समस्याएं भी हमें देखने को मिली, हम भविष्य में इस समस्याओं के कैसे निपट सकते हैं?, उसका समाधान निकालना भी बहुत आवश्यक है। छात्रों का आनलाइन शिक्षण के प्रति क्या रुझान है? इनका इसके प्रति नजरिया क्या है? इन्हीं सब महत्वपूर्ण प्रश्नों का उत्तर जानने के लिए यह शोध पत्र लिखा गया है।

साहित्य समीक्षा

- एशियन जर्नल ऑफ पब्लिक ओपिनियन रिसर्च के वॉल्यूम 9, अंक 4, नवंबर 2021 में "भारत में ऑनलाइन लर्निंग के प्रभाव में कोविड-19 संकट के दौरान विश्वविद्यालय के छात्रों का एक सर्वेक्षण" नाम से शोध पत्र प्रकाशित है जो की मानस प्रतिम गोस्वामी, ज्योति थानवी एवं सौभाग्य रंजन पदी द्वारा लिखा गया है इसमें भी ऑनलाइन शिक्षण के उपयुक्त पद्धति न होने की बात सामने आती है।
- शैक्षणिक अनुसंधान 2021, 6.1 ई-आईएसएसएन नंबर 2468-4929 में गिरीश लक्ष्मण नायक, मातेशकुमार देशपांडे, डीसी शिवानंद, सीपी अजय, जी सी मंजूनाथ ने भी "भारत में कोविड-19 आपातकालीन लॉक डाउन के दौरान उच्च शिक्षा का ऑनलाइन अध्यापन एवं अध्ययन" शीर्षक से प्रकाशित अपने शोध पत्र में ये बताया है कि ऑनलाइन शिक्षण में इंटरनेट स्पीड, बिजली आपूर्ति जैसी तकनीकी समस्याएं हैं।

पैरोकार

- जर्नल ऑफ कंटेम्पररी इश्यू इन बिजनेस एंड गवर्नमेंट, वॉल्यूम 27, नं 1, 2021 पी—आईएसएसएन 2204—1990, ई—आईएसएसएन 1323—6903 में पीयूषा जोषी और डॉ. श्वेता देवांगन द्वारा किए गए शोध अध्ययन “इम्पैक्ट एंड डेवलपमेंट ऑफ ऑनलाइन एजुकेशन इ लर्निंग इन इंडिया” में भी ये बताया गया है कि निकट भविष्य में ऑनलाइन कक्षाएं ही परम्परागत कक्षाओं का स्थान ले लेंगी।
 - डॉ. प्रभात शुक्ला ने इंटर्नेशनल जर्नल ऑफ आल रिसर्च एजुकेशन एड साइंटिफिक मेथड (वाल्यूम—09 अंक—12, दिसम्बर—2021) में प्रकाशित अपने शोध पत्र जिसका शीर्षक “ऑनलाइन माध्यम से शिक्षण के प्रति शिक्षकों की अभिवृत्ति का अध्ययन” के अंतर्गत पाया कि अधिकांश शिक्षकों की अभिवृत्ति ऑनलाइन शिक्षण के प्रति सकारात्मक थी।

शोध का उद्देश्य :

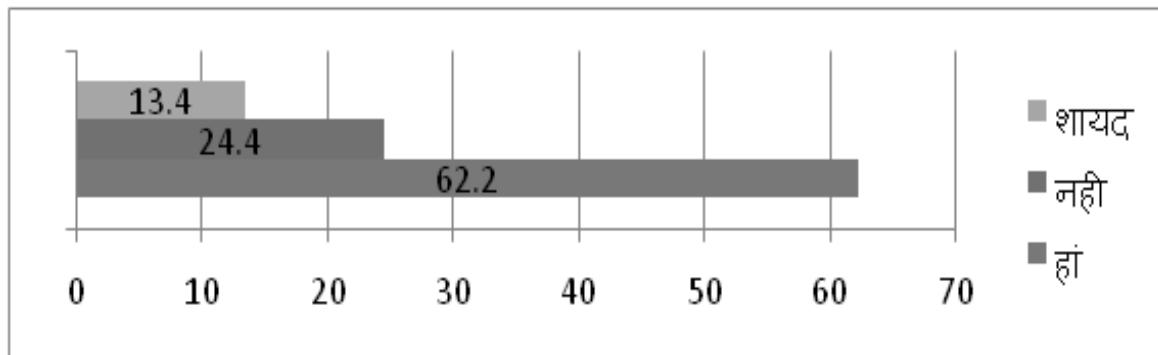
- ऑनलाइन कक्षाओं में विद्यार्थियों की सहभागिता का अध्ययन
 - ऑनलाइन कक्षाओं में विद्यार्थियों की रुचि का अध्ययन
 - ऑनलाइन कक्षाओं की गुणवत्ता का अध्ययन

शोध प्राविधि :

अध्ययन में व्याख्यात्मक शोध अभिकल्प का प्रयोग किया गया है शोध निर्दर्शन हेतु गैर सम्भाव्य निर्दर्शन के अंतर्गत उद्देश्यपरक निर्दर्शन प्रयोग किया गया है। शोध उपकरण में प्रश्नावली का उपयोग किया गया है, जिसमें बंद प्रश्नावली का उपयोग करते हुए 10 प्रश्नों को शामिल किया गया है। शोध के लिए कुल 50 उत्तरदाताओं को माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय भोपाल के रीवा एवं भोपाल परिसरों में संचालित परास्नातक एवं स्नातक पाठ्यक्रमों से लिया गया है। प्राप्त डाटा के रेखीय प्रस्तुतिकरण एवं सारणीयन के लिए एमएस एक्सल का उपयोग किया गया है।

1. आन लाइन और नियमित कक्षाओं में समानता का अध्ययन क्र. सं विकल्प प्रतिशत

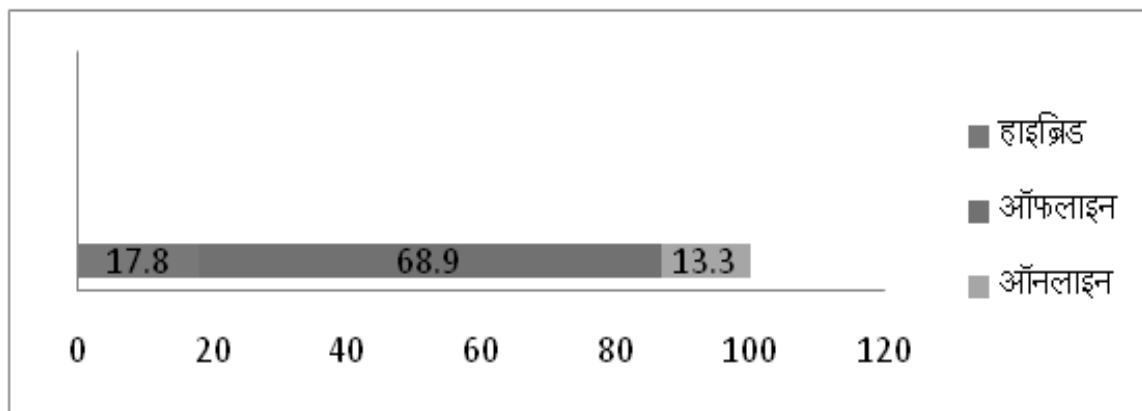
1.	हाँ	66.2
2.	नहीं	24.4
3.	शायद	13.4
कुल प्रतिशत		100



विश्लेषण: कुल उत्तरदाताओं में 62.2 प्रतिशत का मानना है कि ऑनलाइन कक्षाएं नियमित कक्षाओं के समान ही हैं उन्हें इसमें कोई भी बड़ा अंतर नहीं महसूस होता है।

2. कौन सा मोड आप पसंद करते हैं

क्र. सं	विकल्प	प्रतिशत
1.	हाइब्रिड	17.8
2.	ऑफ लाइन	68.8
3.	ऑन लाइन	13.43
	कुल प्रतिशत	100



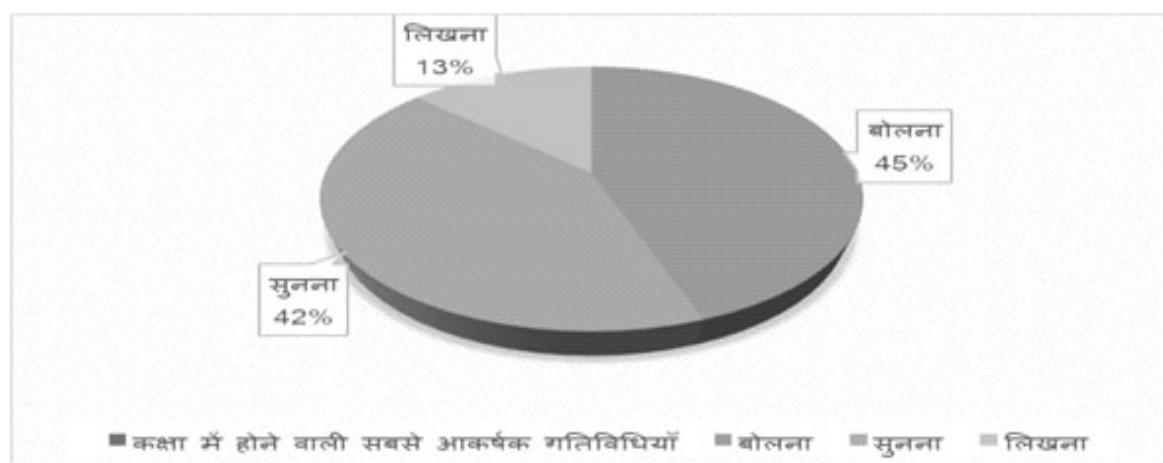
विश्लेषण : समस्त उत्तरदाताओं में से 68.9 प्रतिशत उत्तरदाता ऑफलाइन कक्षाओं को ही पसंद करते हैं वहीं ऑफलाइन एवं ऑनलाइन के हाइब्रिड मोड को 17.8 प्रतिशत उत्तरदाता पसंद करते हैं इससे

पैरोक्तर

यह पता चलता है कि आज भी अधिकांश छात्र ऑफलाइन कक्षाएं ही लेना पसंद करते हैं अर्थात् ऑफलाइन कक्षाओं का रुझान कहीं भी कम नहीं हुआ है।

3. कक्षा में होने वाली सबसे आकर्षक गतिविधियाँ

क्र. सं	विकल्प	प्रतिशत
1.	बोलना	44.4
2.	सुनना	42.2
3.	लिखना	13.3
कुल प्रतिशत		100



विश्लेषण : 44.4 प्रतिशत उत्तरदाता बोलने को ऑन लाइन कक्षाओं में होने वाले सबसे आकर्षक गतिविधि मानते हैं जबकि 13.3 प्रतिशत उत्तरदाता लिखने को सबसे कम आकर्षक गतिविधि मानते हैं।

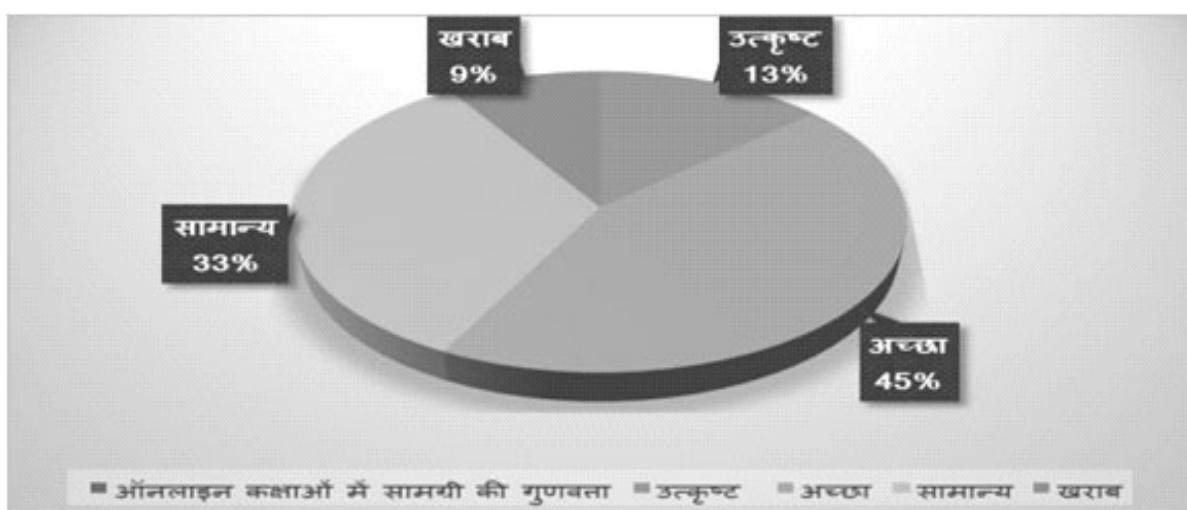
4. ऑन लाइन कक्षाओं के बारे में आप की समझ

क्र. सं	विकल्प	प्रतिशत
1.	अच्छा	35.6
2.	औसत	55.6
3.	बुरा	8.9
कुल प्रतिशत		100

सर्वाधिक 55.6 प्रतिशत उत्तरदाताओं की समझ आनलाइन कक्षाओं को लेकर औसत है जबकि 8.9 प्रतिशत उत्तरदाता आनलाइन कक्षाओं को बुरा मानते हैं।

5. ऑनलाइन कक्षाओं में पाठ्य सामग्री की गुणवत्ता

क्र. सं	विकल्प	प्रतिशत
1.	उत्कृष्ट	13.3
2.	अच्छा	44.4
3.	समान्य	33.3
कुल प्रतिशत		100



विश्लेषण: ऑनलाइन कक्षाओं में प्रस्तुत पाठ्य सामग्री की गुणवत्ता के संबंध में सर्वाधिक 44.4 प्रतिशत उत्तरदाता सामग्री की गुणवत्ता को अच्छा मानते हैं जबकि 8.09 प्रतिशत लोगों का मानना है कि ऑनलाइन कक्षाओं की सामग्री की गुणवत्ता को खराब होती है।

6. ऑनलाइन कक्षाओं में आनंद विश्लेषण :

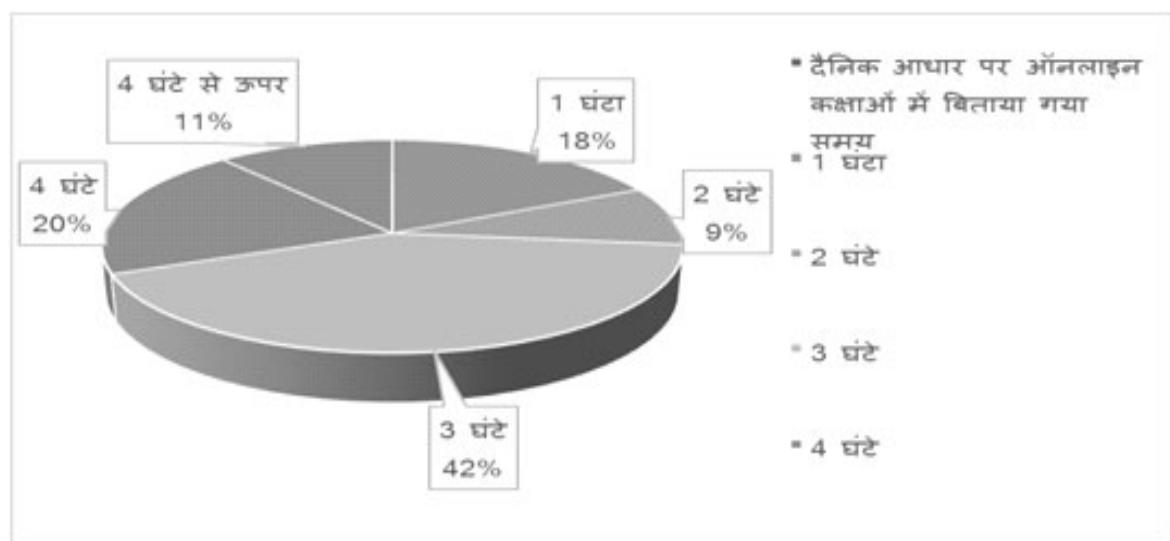
क्र. सं	विकल्प	प्रतिशत
1.	बहुआधिक	11.1
2.	आधिक	31.1
3.	बुरा	57.8
कुल प्रतिशत		100

पैरोक्तर

अध्ययन में शामिल 58 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि ऑनलाइन कक्षाओं में अध्ययन के दौरान ऑफलाइन कक्षाओं के मुकाबले कम आनंद प्राप्त होता है, जबकि 11 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मत है कि आनलाइन कक्षा में ऑफलाइन के मुकाबले ज्यादा आनंद मिलता है।

7. दैनिक आधार पर ऑनलाइन कक्षाओं में बिताया गया समय विश्लेषणः

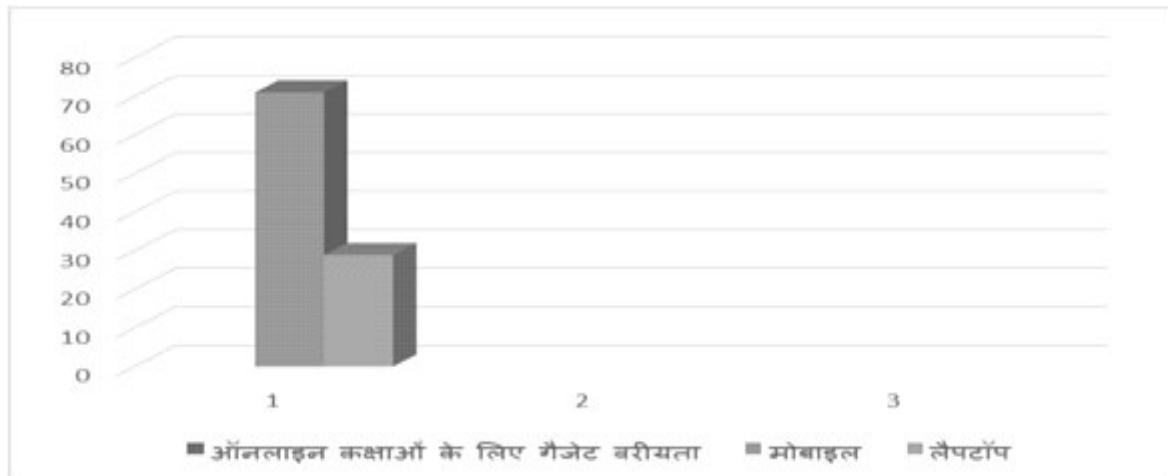
क्र. सं	विकल्प	प्रतिशत
1.	1 घंटा	17.8
2.	2 घंटे	8.9
3.	3 घंटे	42.2
4.	4 घंटे	20
5.	4 घंटे से ऊपर	11
कुल प्रतिशत		100



अध्ययन में शामिल कुल उत्तरदाताओं में से 42.2 प्रतिशत उत्तरदाता 3 घंटे का समय ऑनलाइन कक्षाओं में बिताते हैं, 8.90 प्रतिशत उत्तरदाता 2 घंटे के लगभग का समय ऑनलाइन कक्षाओं में बिताते हैं इस प्रकार देखा जाए तो 3 घंटे का समय औसतन ठीक-ठाक समय है जितना कि विद्यार्थियों को ऑनलाइन कक्षा में देना ही चाहिए।

8. ऑनलाइन कक्षाओं के लिए गैजेट वरीयता विश्लेषण:

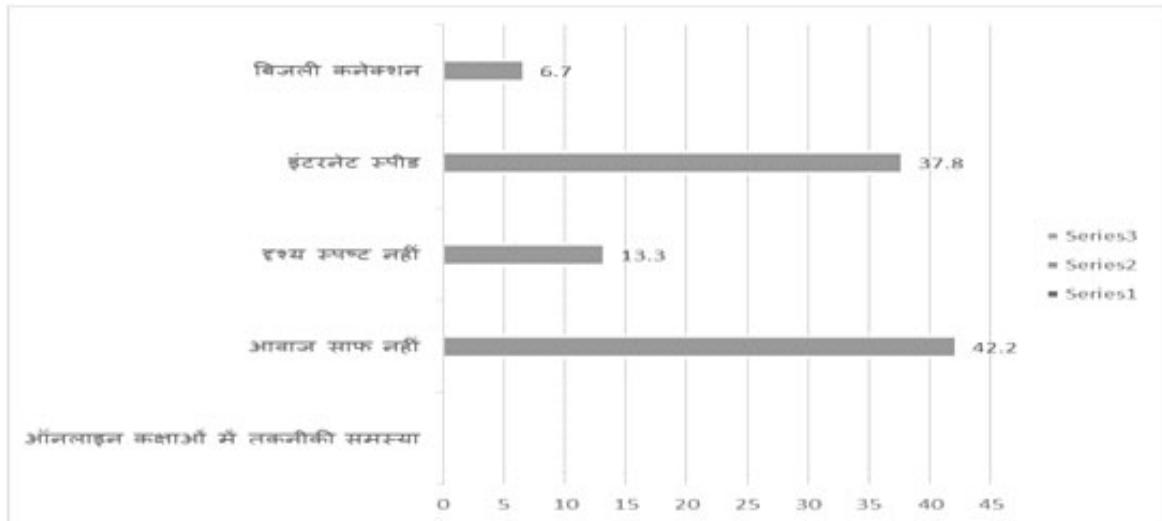
क्र. सं	विकल्प	प्रतिशत
1.	मोबाइल	71.1
2.	लैपटॉप	28.9



अध्ययन में शामिल कुल उत्तरदाताओं में से 71.1 प्रतिशत उत्तरदाता मोबाइल गैजेट का प्रयोग ऑनलाइन कक्षाओं को लेने हेतु करते हैं, जबकि 28.9 प्रतिशत उत्तरदाता लैपटॉप का उपयोग ऑनलाइन कक्षा हेतु करते हैं। इससे ज्ञात होता है कि छात्र मोबाइल पर अध्ययन हेतु अधिक निर्भर हैं।

9. ऑनलाइन कक्षाओं में अध्ययन के दौरान आने वाली प्रमुख तकनीकी समस्या विश्लेषण

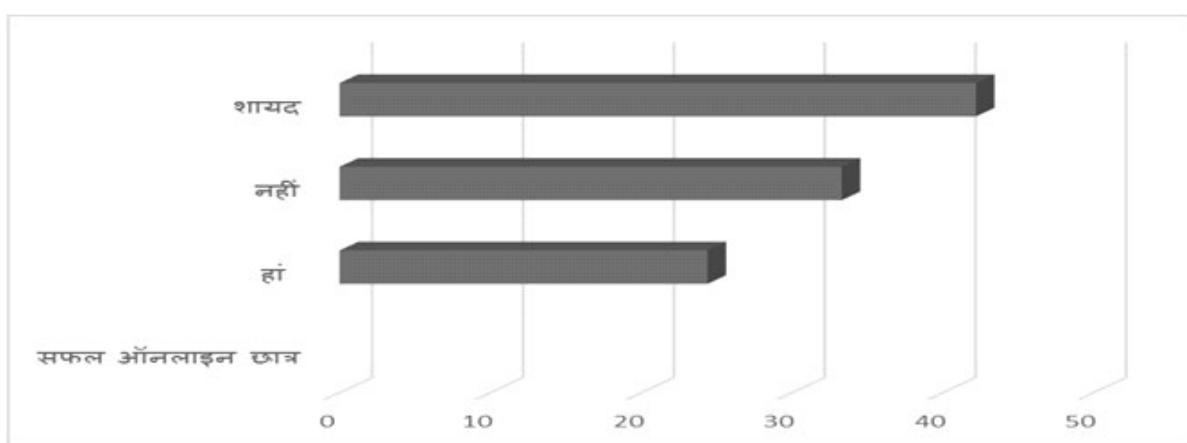
क्र. सं	विकल्प	प्रतिशत
1.	आवाज साफ नहीं	42.2
2.	दृश्य स्पष्ट नहीं	13.3
3.	इंटरनेट स्पीड / कनेटीविटी	37.8
4.	बिजली कनेक्शने	6.7
	कुल प्रतिशत	100



अध्ययन में शामिल कुल उत्तरदाताओं में से 42.2 प्रतिशत उत्तरदाता आवाज की समस्या और 37.8 प्रतिशत उत्तरदाता इंटरनेट स्पीड या कनेक्टिव्हिटी को ऑनलाइन कक्षाओं में अध्ययन के दौरान आने वाली प्रमुख तकनी की समस्या के तौर पर चिह्नित करते हैं।

10. आनलाइन माध्यम से शिक्षा ग्रहण करने को लेकर छात्रों का नजरिया विश्लेषण:

क्र. सं	विकल्प	प्रतिशत
1.	सफलीं	24.24
2.	असफले	33.3
3.	कुछ हद तक	42.2
	कुल प्रतिशत	100



अध्ययन में शामिल कुल अत्तरदाताओं में से 33.3 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि आनला (NMEICT, 2015) इन माध्यम छात्रों को शिक्षा देने असफल है, 24.4 प्रतिशत के लिए यह सफल तथा सर्वाधिक 42.2 प्रतिशत उत्तरदाताओं के लिए यह कुछ हद तक सफल लगता है।

निष्कर्ष :

- समानता के मामले में ऑनलाइन कक्षाएं भी उसी प्रकार संचालित होती हैं जैसे कि ऑफलाइन कक्षाएं दोनों की महत्ता बराबर ही है।
- ऑनलाइन एवं ऑफलाइन कक्षाओं में समानता के बावजूद ऑफलाइन कक्षाएं ही छात्रों की पहली पसंद के रूप में उभरी हैं, उनकी महत्ता हमेशा ही थी और बनी रहेगी।
- कक्षा में होने वाली विभिन्न गतिविधियों में बोलने और सुनने का कार्य लगभग सभी विद्यार्थी पसंद करते हैं वही लिखने का काम बहुत कम विद्यार्थियों को ही पसंद है।
- ऑनलाइन कक्षाओं की समझ के मामले में भी अधिकतर विद्यार्थी ऑनलाइन कक्षाओं को ऑफलाइन कक्षाओं के मुकाबले औसत ही मानते हैं।
- अधिकांश विद्यार्थी ऑनलाइन कक्षाओं की विशय सामग्री को भी अच्छा मानते हैं। लेकिन वो ऑनलाइन कक्षाओं से प्राप्त होने वाले आनंद से संतुष्ट नहीं हैं।
- अधिकतर विद्यार्थी ऑनलाइन कक्षाओं में 3 घंटे का समय व्यतीत करते हैं जो कि पर्याप्त है।
- ऑनलाइन कक्षाओं में जुड़ने केलिए सर्वाधिक विद्यार्थी मोबाइल का प्रयोग करते हैं।
- ऑनलाइन कक्षाओं की सबसे बड़ी तकनीकी समस्या स्पष्ट आवाज, और इंटरेट कनेक्टिविटी है।
- बहुसंख्य छात्रों का मानना है कि ऑनलाइन माध्यम छात्रों को शिक्षा देने में पूर्ण सफल नहीं है।

सुझाव :

- ऑनलाइन कक्षाओं के दुश्प्रभावों पर अध्ययन किया जा सकता है
- ऑनलाइन कक्षाओं के तनाव स्तर का आकलन पर अध्ययन किया जा सकता है
- ऑनलाइन अध्ययन सामग्री और छात्रों की आवश्यकताओं पर अध्ययन किया जाना चाहिए जिससे कि भविष्य के लिए इस माध्यम को और प्रभावशाली और उपयोगी बनाया जा सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

- (2022) <http://cec.nic.in/Pages/About-CEC.aspx> 8G, 20 05 2022 को पुनर्प्राप्त
- Consortium for Higher Education Eresources- National Digital Library of India-[doi: https://ndl-iitkgp-ac-in/](https://ndl-iitkgp-ac-in/) 16 E, ShodhSindhu
- Dr. Prabhat Shukla (2022) International Journal of All Research Education and Scientific Methods (IJARESM), 9(12).
- Objectives of the Virtual Labs (2022) Ministry of Human Resource Development, Government of India, Virtual Labs, New Delhi, <http://www-vlab-co-in/> ls, 11 05 2022 को पुनर्प्राप्त
- Mission on Education through Information and Communication Technology Sakshat (2015) Ministry of Human Resource Development, Government of India] New Delhi- <http://www-sakshat-ac-in/document/nmeict&brochur> से, 16 05 2022 को पुनर्प्राप्त
- NMEICT (2015), New Delhi: Ministry of human Resource Development, government of India, <http://w-w-w-sakshat-ac-in/document/nmeict brochure 30.11.2015-pdf> से पुनर्प्राप्त
- NMEICT (2015) Brochure New Delhi : Sakshat, Ministry of Human Resource Development, Government of India] <http://www-sakshat-ac-in /document/nmeict brochure &30&11&2015 pdf> से पुनर्प्राप्त
- गिरीश लक्ष्मण नायक, मातेशकुमार देशपांडे— डीसी शिवा (1.6. 2021), भारत में कोविड-19 आपातकालीन लॉकडाउन के दौरान उच्च शिक्षा का ऑनलाइन अध्यापन एवं अध्ययन, शैक्षणिक अनुसंधान
- पीयूष जोशी— डॉ. श्वेता देवांगन (2021), इम्पैक्ट एंड डेवलपमेंट ऑफ ऑनलाइन एजुकेशन इ लर्निंग इन इंडिया, जर्नल ॲफ कंटेम्पररी इश्यू इन बिजनेस एंड गवर्नमेंट, 27 (1).
- मानस प्रतिम गोस्वामी, ज्योति थानवी— सौभाग्य रंजन. (2021), "भारत में ऑनलाइन लर्निंग के प्रभाव में कोविड-19 संकट के दौरान विश्वविद्यालय के छात्रों का एक सर्वेक्षण. एशियन जर्नल ॲफ पब्लिक ओपिनियन रिसर्च, 9(4)

सांस्कृतिक राष्ट्रीयता बनाम सांस्कृतिक राष्ट्रवाद

प्रत्येक राष्ट्र की एक निजी संस्कृति होती है, जो उसको एक सूत्र में बांध के रखती है। रीति-व्यवहार, भाषा, साहित्य, शिक्षा, कला, रहन-सहन, जीवन-दर्शन एवं मान्यताओं सभी का समाहार संस्कृति के अंतर्गत हो जाता है। रामधारी सिंह दिनकर के शब्दों में— “प्रत्येक सभ्यता, प्रत्येक संस्कृति अपने आप में पूर्ण होती है। उसके सभी अंश, उसके सभी पहलू एक दूसरे पर अवलंबित और सब के सब किसी एक केंद्र से संलग्न होते हैं।”¹ सांस्कृतिक एकता राष्ट्रीयता की आत्मा है। सांस्कृतिक मूल्यों की विभिन्नता राष्ट्रवासियों के मध्य परस्पर भेद उत्पन्न कर देती है, किंतु यदि सांस्कृतिक मूल्य समान होंगे तो राष्ट्रवासियों के बाह्य विभिन्नता परिलक्षित होते हुए भी उनके अंतर्लकरणों में एक सामान्य भावना की सरणी प्रवाहित होती रहेगी। उनके जीवनादर्शों, मान्यताओं और लक्ष्यों में साम्य होगा। युग-युग से संचित संस्कृति राष्ट्र की अमूल्य धरोहर है।

राष्ट्रीयता का मूल आधार संस्कृति है। संयुक्त राज्य अमेरिका में फ्रेंच, जर्मन, इटालियन, ग्रीक आदि लोगों की समान संस्कृति का अनुसरण ही परस्पर ग्रंथित किए हुए हैं। पर भारतीय संस्कृति में अनेकता में एकता की भावना रही है। भारतीय राष्ट्रीयता भारतीय संस्कृति से अनुरंजित एवं अनुप्राणित है। दिनेशचंद्र भारद्वाज के मतानुसार—“किसी समाज, जाति अथवा राष्ट्र के समस्त व्यक्तियों के उदात्त संस्कारों के पुंज का नाम उस समाज, जाति और राष्ट्र की संस्कृति है।”² इस विषय पर डॉ. नगेंद्र का विचार है कि—“राष्ट्रीयता का संबंध देश के स्थूल सुख-दुख और आक्रोश के चित्रण से ही नहीं होता बल्कि राष्ट्र की आत्मा या चेतना की पहचान से होता है, वरन् उसी

डॉ. मोहम्मद आसिफ आलम
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
विद्यासागरकॉलेज फॉरवीमेन, कोलकाता

से अधिक होता है। यह चेतना स्थिर न होकर गतिशील रहती है, अर्थात् यी परिस्थितियों में नए-नए कोण उभारती रहती है और पुराने कोण छोड़ती रहती है। संस्कृति का संबंध इसी आत्मा या चेतना से होता है। यह संस्कृति जहां इतिहास के रूप में हमारे लिए प्रेरणा और पृष्ठभूमि बनती है, वहां वर्तमान चेतना सेस्पन्दित होकर हमारा जीवन बन जाती है।”³

19वीं शताब्दी भारत के सांस्कृतिक जीवन के अभूतपूर्व जागरण का काल माना जाता है। राजा राममोहन राय, केशवचंद्र सेन, दयानंद सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद, देवेंद्रनाथ ठाकुर जैसे महाप्राण क्रांतिर्दर्शियों ने अपने व्याख्यानों, लेखों, और आध्यात्मिक जीवन के आदर्शों में मध्यकालीन वासना, आलस्य और रूढिवादिता की तंद्रा को दूर कर जनजीवन में नई आकांक्षाओं का संचार किया और आत्मोद्धार की नवीन प्रेरणा दी। इसके परिणामस्वरूप बीसवीं शताब्दी के चरण में तिलक, अरविंद घोष, रानाडे, लाला लाजपत राय और महात्मा गांधी ने अपने असाधारण व्यक्तित्व से कूटनीति और संगीनों के बल पर चलने वाले विदेशी शासन के प्रति बढ़ते हुए जनाक्रोश को एक संगठित आंदोलन का रूप दिया, जिसने एक बार विदेशी शासन को झकझोर दिया। राष्ट्रीय आंदोलन की यह गूंज क्रांतिकारी कार्यवाहीयों के रूप में दशकों तक चलती रही जिसमें ‘राष्ट्रीयता’ की भावना धार्मिक और सांस्कृतिक वृत्ति से प्रेरित होकर युद्धोत्साह के रूप में प्रकट हुई। ए.आर.देसाई के अनुसार—

“राजनीतिक और संस्कृति के अन्यान्य क्षेत्रों में इधर जो आंदोलन हुए हैं वे सजग राष्ट्रीयता की भावना से ही उत्प्रेरित हुए हैं, चाहे इन आंदोलनों का संगठन राष्ट्रों ने अपनी स्वतंत्रता और संस्कृति की रक्षा और पुष्टि के लिए किया हो या दूसरे राष्ट्रों की स्वतंत्रता और संस्कृति के अपहरण के लिए।”⁴

सांस्कृतिक चेतना की अभ्युत्थान में साहित्य, शिक्षा और कला का उल्लेखनीय योगदान रहता है। राष्ट्रीय साहित्य राष्ट्रीयता की भावना को बल प्रदान करता है। राष्ट्रीयजन— जागरण में साहित्य का महत्व असंदिग्ध है। डॉ. भगवती प्रसाद सिंह के विचार से— “सांस्कृतिक क्रांति तथा राजनीतिक परिवर्तन के क्षणों में भी साहित्यकार को महत्वपूर्ण भूमिका निभानी पड़ती है। व्यष्टि और समष्टि के बीच समन्वय साधना के इस असिधार व्रत का पालन शक्ति—संपन्न रचनाकार ही कर सकता है।”⁵ राष्ट्रीय एकता की सुदृढ़ता के लिए राष्ट्रीय शिक्षा का भी विशेष महत्व है। राष्ट्रीय शिक्षा ही युवा—वर्ग में राष्ट्र के प्रति अनन्यता और अनुराग के भाव उत्पन्न करने का सर्वश्रेष्ठ साधन है। वह राष्ट्र की युवा—पीढ़ी में युवा—भावों का संचार करती है तथा कला, संगीत एवं नृत्य भी राष्ट्रीय का निर्माण में योग देते हैं। कलाकृति सांस्कृतिक व्यक्तित्व की रक्षा करना भी राष्ट्रीयता का एक अभिन्न अंग है क्योंकि सांस्कृतिक व्यक्तित्व की चेतना के अभाव में राष्ट्रीयता का विकास अत्यंत कठिन होता है। डॉ. प्रभुदत्त शर्मा के अनुसार— “राजनीति और संस्कृति का संबंध घनिष्ठ है क्योंकि व्यक्ति के सांस्कृतिक आचरण में जो स्थायित्व पाया जाता है वह उसके राजनीतिक व्यवहार पर पड़ने वाले प्रभाव की संभावनाओं को बढ़ाता है।”⁶ व्यक्तिगत पवित्रता, व्यक्तिगत महानता, व्यक्तिगत साधना, साधन, शुद्धि, हृदय

परिवर्तन, अस्पृश्यता निवारण, हिंदू—मुस्लिम एकता की भावना, अहिंसा, पाश्चात्य संस्कृति के प्रति आदर रखते हुए उसके केवल सदांशों को ही अपनाने की प्रवृत्ति, असहयोग, बहिष्कार, ग्रामोत्थान, व्रत, उपवास, अनशन आदि हमारी राष्ट्रीयता के अनिवार्य अंग है। पंडित नेहरू का कहना है कि—“राष्ट्रीयता की भावना चाहे कितनी ही गहरी हो, सच्ची अंतर्राष्ट्रीयता को कबूल करने में और संसार—व्यापी संगठन और राष्ट्रीय संगठन के बीच मेल कराने, बल्कि राष्ट्रीय संगठन को संसार व्यापी संगठन को मातहथ रखने के मामले में हिंदुस्तान बहुत सी और कौमों के मामले में आगे बढ़ गया है।”⁷

भारतीय सांस्कृतिक राष्ट्रीयता की विशेषता की सराहना करते हुए एस. राधाकृष्णन एक प्रस्तावना में लिखते हैं— “India’s cultural history of several thousand years shows that the subtle but strong thread of unity which runs through the infinite multiplicity of her life, was not woven by stress or pressure of power groups but the vision of seers, the vigil of saints, the speculation of philosophers, and the imagination of poets and artists and that these are the only means which can be used to make this national unity wider, stronger and more lasting.” (भारत का हजारों वर्षों का सांस्कृतिक इतिहास न केवल विलक्षणता को दर्शाता है अपितु एकता के शक्तिशाली सूत्र को परिलक्षित करता है। यह सूत्र अनेक प्रकार की विविध जीवन शैलियों का समागम है। यह एकता सूत्र किसी शक्तिशाली समूह के दबाव की परिणति नहीं है बल्कि सिद्ध पुरुषों की दूरदर्शिता, संतों की तत्परता, दार्शनिकों की सृजनता तथा कवियों व कलाकारों की कल्पनाशीलता का प्रतिफलन है और यहीं वे कारक हैं जो कि राष्ट्रीय एकता को व्यापक, शक्तिशाली तथा अधिक स्थायी बनाते हैं।)

आधुनिक युग में पुनर्जागरण की लहर राजा राममोहन राय से महात्मा गांधी तक दिखाई पड़ती है। इस दौरान सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक आंदोलनों ने कुरीतियों, जड़ताओं, जातिवाद और संप्रदायवाद पर प्रहार करके स्वतंत्रता का अलख जगाया था। इस पुनर्जागरणवादी चेतना का परिणाम था कि भारत स्वाधीन हुआ और भारतीय संविधान में किसी 'धर्म-राष्ट्र' को नकारते हुए 'धर्मनिरपेक्षता' की नीति को अपनाया गया।

लेकिन आज उत्तर-आधुनिकता के इस युग में राष्ट्रीय एकता, समाजवाद, वैज्ञानिक-चिंतन, धर्मनिरपेक्षता और गुटनिरपेक्षता जैसे मूल्य ऊपरी सतह पर केवल चर्चाओं में रह गए हैं। स्वाधीनता के पश्चात् अलगाव की त्रासदी, सांप्रदायिक-मानसिकता और जातीय-संघर्ष बढ़ते गए हैं। सत्ता-सुख और मतबटोरने के लिए कुत्सित राजनीतिज्ञों ने उन्हें बढ़ावा दिया है। अमूमन कुछ दल इन्हें अपने वर्चस्व के लिए इस्तेमाल करता रहा है। आज उसी का ही उग्र और आक्रामक उभार संघ-परिवार के हिंदू-राष्ट्र', हिंदुत्व और सांस्कृतिक, राष्ट्रवाद में दिखाई पड़ता है। आज एक ओर संघ परिवार का इस्लाम और इसाई मानसिकता और कट्टरता का विरोध, बाबरी मस्जिद का ध्वंस, राममंदिर का निर्माण, गुजरात के दंगे, ईसाई प्रचारकों की हत्याओं, भोजशाला विवाद, लव जिहाद, ज्ञानवापी मस्जिद विवाद आदि 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' के नाम पर भारत को हिंदू-राष्ट्र बनाने में दिखाई पड़ता है तो दूसरी ओर इसी प्रकार की प्रवृत्तियां गोधरा कांड, अक्षरधाम और रघुनाथ मंदिर पर आक्रमण, कश्मीर में आतंकवाद को प्रश्रय देकर निर्दोशों की हत्या कराने, सलमान रुशदी और तस्लीमानसरीन के मौत के फतवों और तुर्की से पाकिस्तान तक, चेचन्या से ईरान तक उभरे हुए मुस्लिम उन्माद में दिखाई पड़ रही है।

'सांस्कृतिक राष्ट्रीयता' के स्थान परजिस 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' की बात उठाई जा रही है, वह अवांतर से नस्लवाद है, जो संघ परिवार से सत्ता और उभार में आने पर अस्तित्व में आया। इसने देश की पूरी गरिमामय साझी सांस्कृतिक विरासत को छिन्न-भिन्न कर भारतीय राष्ट्रीयता को ही खतरे में डाल दिया है। कंवल भारती का कहना है कि—"राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और उसके परिवार ने एक राष्ट्र के रूप में जीने की आकांक्षा हिंदुओं में विकसित की है और राष्ट्रवाद के लिए हिंदूराज स्थापना उसकी राजनीतिक परिकल्पना है। इसी आधार पर भाजपा नेता एक जन एक संस्कृति और एक राष्ट्र का नारा देते हैं। यही उनका सांस्कृतिक राष्ट्रवाद भी है। 33 प्रतिशत भाजपा और संघ परिवार ने अपने हिंदू राष्ट्रवाद को सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का नाम दिया है, जो करोड़ों अल्पसंख्यक समुदायों के लोगों के प्रति अलगाव और शात्रुता का भाव रखता है, जबकि वे इसी भारत के नागरिक हैं। इसलिए यह एक ऐसा अमूर्त राष्ट्रवाद है, जो संकीर्ण और संकुचित होने के साथ-साथ गैर हिंदू भारतीयों की देशभक्ति को ही अपमानित करता है। भाजपा और संघ परिवार और राष्ट्रीयता के लिए भारतीयता के भाव को स्वीकार नहीं करते, बल्कि वह हिंदुत्व के भाव को स्वीकार करते हैं, जो प्रकारांतर से ब्राह्मणवाद के पुनरुत्थान की ही राजनीति है।"⁹ इस सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए के.एन. पणिकरकहते हैं कि—"The politics of religious identity has gained unprecedented influence in India in recent time as evident from the rise of Bhartiya Janta Party to power- It reflects a qualitative change in the state of consciousness in civil society and a departure from political culture so far practiced in independent

India...-The secular territorial concept of nationalism is also under siege; it is sought to be replaced by an exclusionist nation of religious & cultural nationalism”¹⁰ (वर्तमान समय में धर्म के आधारित राजनीति का अत्यंत ही अप्रत्याशित प्रभाव भारत भूमि पर पड़ा है जो कि भाजपा के सत्ता के आने से सिद्ध होता है। इस समाज में व्याप्त जागरूकता में आए गुणात्मक परिवर्तन और राजनीतिक सांस्कृति के प्रस्था नया पतन को दर्शाता है। भारत का राष्ट्रवादी लोकतांत्रिक स्वरूप भी अब संकट में है, जो कि अब संकीर्ण धार्मिक राष्ट्र तथा सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के रूप में प्रतिस्थापित हो रहा है।)

स्वतंत्रता के पश्चात् भारत की जनता कई भयानक दंगों की गवाह रही है और विशेषकर पिछले दो दशक से सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के नाम पर सांप्रदायिक हिंसा, लूटपाट, कत्लेआम एवं बलात्कार का तो नंगा नाच अपने देश में देख रही है। अयोध्या में हुए बाबरी मस्जिद और वाराणसी के ज्ञानवापी मस्जिदकांड, रथयात्रा, गुजरात का जनसंहार, लवजिहाद, वैलेंटाइन डे का विरोध, ईसाई मिशनरियों पर कातिलाना हमला, पोप की यात्रा का विरोध, ईसाई साध्वियों का बलात्कार आदि सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के नाम पर एक कुत्सित एवं निकृष्ट चरित्र को परिलक्षित किया जा सकता है। इन सांप्रदायिक एजेंडों को सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का नाम देकर प्रिया सहगल का कहना है कि “ The communal agenda of the yatra was gliblye plained away as a move to revive cultural nationalism” (सांप्रदायिक एजेंडा का यात्रा छद्म रूप से सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के पुनर्सृजन के रूप में व्याख्यायित किया गया था।) स्पष्ट है कि आज यह एक विशुद्ध रूप से राजनीतिक हथकंडा है, जिसको

धर्म का चोला चढ़ाकर प्रस्तुत किया जा रहा है। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का यह उभार सांप्रदायिकता विरोधी शक्तियों की गलतियों के कारण हुआ और यही गलती हमारे राष्ट्र को पतन की ओर धकेल रही है।

‘सांस्कृतिक राष्ट्रवाद आज शिक्षा के अंदर समर्त सकारात्मक पक्षों को भी नष्ट कर अतार्किक, पोंगापंथी के मूल्यों एवं पूर्वाग्रहों को घुसाते जा रहा है, जिसमें संवाद, विमर्श, तर्क, बहस के लिए कोई स्थान नहीं है। कारण साफ है, शिक्षा ही वह अस्त्र है जो मानव को व्यक्ति बनाती है वैज्ञानिक व तर्कशील दृष्टिकोण को घटनाओं के विश्लेषण का आधार बनाने पर बल देती है। सरोज कुमारी यादव का वक्तव्य है कि— “मानव संसाधन विकास मंत्रालय राष्ट्रीय शैक्षणिक शोध व अनुसंधान परिषद (NCERT) के माध्यम से स्कूली स्तर के लिए ऐसी राष्ट्रीय पाठचर्या थोपने की कोशिश कर रहा है, जिसमें भारतीयकरण तथा मूल्याधारित शिक्षा पर अनुचित जोर देने के माध्यम से ‘सांस्कृतिक राष्ट्रवाद’ को बढ़ावा दिया है।”¹²

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के इस चरित्र को महिलाओं के साथ किए जा रहे व्यवहार में भी देखा जा सकता है। एक तरफ महिला को ‘मिस इंडिया’, ‘मिस वर्ल्ड’ और ‘मिस यूनिवर्स’ ‘बनने के लिए किसी भी हद तक नग्न करने पर कोई आपत्ति नहीं जताई जाती है, तो दूसरी ओर लखनऊ विश्वविद्यालय की छात्राओं द्वारा जींस पहनने से भारतीय संस्कृति कलंकित होती है, तीन तलाक का नूनविवाद, कर्नाटक में हुए हिजाब विवाद, कानपुर में वैलेंटाइनडे का विरोध, ‘फायर’ व ‘वाटर’ जैसी फिल्म के प्रदर्शन पर रोक, मकबूल फिदा हुसैन तथा जतिन दास के चित्रों को नुकसान पहुंचानेवे आदि जैसे ‘सांस्कृतिक

राष्ट्रवाद का निर्माण करने के ज्वलंत उदाहरण है। जाहिर है कि भारत में राजनीति करने के लिए राजनीतिक दलों में कई अलग—अलग आधारों को अपना केंद्र बनाया है। किसी ने धर्म को अपना राजनीतिक आधार बनाया तो किसी ने जाति को धर्म की राजनीति में दंगों की राजनीति करने के लिए। कंवल भारती के शब्दों में—“हिंदू राष्ट्रवादियों को मंदिर से और मुस्लिम राष्ट्रवादियों को मस्जिद से कोई लगाव नहीं है। उनके सारे लगाव राजनीतिक हैं। ‘मंदिर—मस्जिद’ इन दोनों राष्ट्रवादियों के लिए वे साधन हैं, जिनसे आम जनता को तथा कथित मुक्ति के जाल में फँसाकर वे अपने हितों को पूरा करते हैं।”¹³

वास्तव में, एक राष्ट्र का जन्म तभी होता है, जब उसकी सीमा में रहने वाले सभी नागरिक सांस्कृतिक विरासत और एक—दूसरे के साथ भागीदारी की भावना को साझा करते हैं। यह राष्ट्रवाद की एकतरफा भावना ही है जो कश्मीर से कन्याकुमारी तक भारत को एक सूत्र में बांधती है। भारत के विकास के लिए यह अनिवार्य है कि उसके नागरिक अपने विचारों और विचारों में भिन्न होने के बावजूद भी एक साथ काम करते रहें और यह उनके बीच राष्ट्रीयता की भावना को विकसित करने के माध्यम से ही संभव हो सकता है। हां, कुछ ताकतें हैं, जो आजादी और मुक्ति के लिए अलगाववादी भावनाओं और संकटों को फैलाकर देश को कमजोर करना चाहती है। यह दुर्भाग्यपूर्ण है। राष्ट्रवाद की एक अटूट भावना ही देश को भारत विरोधी ताकतों की बुराई के शिकार होने से बचा सकती है।

संदर्भ सूची :

1. संस्कृति के चार अध्याय, पृ. 749

2. भारतीय संस्कृति का इतिहास, पृ. 2
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 20
4. भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, पृ. 3
5. साहित्य और संस्कृति कुछ अन्तर्यात्राएं, पृ. 2
6. तुलनात्मक राजनीतिक संस्थाएं, पृ. 115
7. हिन्दुस्तान की कहानी (Discovery of India), पृ. 68
8. The national culture of India, pg- vii
9. जाति, धर्म और राष्ट्र, पृ. 70–71
10. An Agenda for cultural Action, Pg. 21
11. India Today, Sep 20, 2004, Pg.22
12. हंस, November 2003, पृ. 69
13. जाति, धर्म और राष्ट्र, पृ. 194



कोरोना कालीन कहानियों की पड़ताल

अजय चौधरी
प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
पी.एन.दास कॉलेज, पलता

हम एक ऐसे दौर से गुजर रहे हैं जहाँ जीवित रहने की जिजीविषा ही सर्वोपरि है। जीने की जदोजहद ही जैसे जीवन का ध्येय हो गया हो, चारों तरफ दुख, वेदना, विषाद व हाहाकार है। जीवन की सुरक्षा ही प्राथमिक हो गई है। मनुष्य एक—दूसरे को शक की निगाह से देख रहा है। ऐसे दुख के समय में मनुष्य की मानवीय संवेदनाएं भी खतरे में आ गई हैं, जहाँ आपसी सहयोग की आवश्यकता है वही मनुष्य एक दूसरे से सोशल डिस्टेंसिंग के अर्थ को आत्मसात कर रहा है। सोशल डिस्टेंसिंग जैसे शब्द न तो भारत की प्रकृति से मेल खाती है और न यह भाषा ही भारतीय है। भारत की संस्कृति सह—अस्तित्व की है, सोशल डिस्टेंसिंग जैसे शब्द भारतीय प्रकृति के सह—अस्तित्व को खतरे में डाल दी है, फिर भी भय से इस शब्द को ऐसे चिपका कर रख लिए हैं जैसे यही हमारे जीवन का अमृत है, मनुष्य सामाजिक प्राणी है। समाज में रहते हुए आपसी सहयोग की प्रवृत्ति को आत्मसात किए हुए थी, लेकिन कोरोना जैसी महामारी मनुष्य से मनुष्य की बीच की दूरी को बढ़ा दिया है, लगता है जैसे हम अपनी आपसी सहयोग की प्रवृत्ति को ही तिलांजलि दे चूके हैं, मनुष्य स्वयं में केन्द्रित हो गया।

ऐसी विषम परिस्थिति में साहित्य पीछे कैसे रह सकती है। यह एक वैश्विक समस्या है। इस समस्या से लड़ने के लिए विश्व के सभी देश को करबद्ध होना होगा लेकिन ऐसी कोई सदीक्षा दिखाई नहीं दे रही है, मुनाफाखोरी की पूँजीवादी व्यवस्था ने जैसे पूरी अर्थव्यवस्था को अपनी पास में जैक बंद कर लिया हो मनुष्य को पूँजी की एक इकाई के रूप में मशीन बना दिया गया है उससे केवल लाभ कमाना भर रहा

गया है। इस मुनाफाखोरी पूँजी में व्यवस्था ने इंसान को मशीन में बदल दिया है जिससे मनुष्य के अंदर की संवेदनाएं भी मर चुकी हैं बेरोजगारी, कॉर्पोरेट सेक्टर से बेकार हुए युवा, लघु उद्योग, छोटी मोटी व्यापारियों का जो आर्थिक हानि हुई है या हो रही है उसके पीछे मुनाफाखोरी पूँजी व्यवस्था की एक घोष साजिश दिखाई दे रही, छोटे—मोटे पूँजीपतियों को, कामगारों को खत्म कर एक विशाल मशीन व्यवस्था का निर्माण करने की प्रक्रिया शुरू हो चुकी है, वर्तमान सरकार भी इस योजना में अहम भूमिका निभा रही हैं। आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग के प्रति मुनाफाखोरी पूँजी व्यवस्था ने शोषण के चक्र में पीस दिया है, बिना सूचना के हठात लॉकडाउन श्रमिक व का मदार वर्गों के बीच एक विस्फोट के समान था, श्रमिक समझ नहीं पाए उनका भविष्य क्या है, सरकार लगातार इन श्रमिक वर्गों के लिए योजनाएं बना रही थी लेकिन इस सारी योजनाएं आपसी असहयोग के कारण विफल हो रही थी, जहाँ कुरैशी की कहानी ‘धारावी स्पेशल श्रमिक ट्रेन’ में श्रमिकों की स्थिति का यथार्थ चित्रण किया गया। इस कहानी में सरकार के प्रति मोहभंग होते हुए श्रमिकों की दयनीयता आक्रोश—क्षोभ को देखा जा सकता है। सरकार द्वारा बिना पूर्वनियोजित के अचानक लॉक डाउन लगा देने से दिन—मजदूर अचानक खुद को असहाय महसूस करने लगे। इस कहानी में गोरखपुर से आई मुंबई श्रमिकों के श्रमदान के बावजूद भूख दुख और पीड़ा से संघर्ष करते हुए कहानी बयान करती है साथ ही वर्तमान सरकार की नीतियों का भी पर्दाफाश करती है। स्पेशल ट्रेन के नाम पर मजदूर—श्रमिकों का शोषण

सरकार वर्तमान सरकार ने किस प्रकार की है उसका यथार्थ चित्र इस कहानी में देखने को मिलता है, बिना काम के मजदूर भूख और पीड़ा से मजबूर होकर अपने गांव की ओर पलायन करना शुरू किया। पलायन की प्रक्रिया भी बहुत दुखदाई थी। लॉकडाउन के कारण कई राज्यों की सीमाएं बंद कर दी गई थी। भूखे प्यासे रोजगार के अभाव में मजदूर के एकमात्र ध्येय अपने घर की वापसी थी। यह वापसी भी सहज नहीं थी। इस रोजगार की तलाश में वह अपने गांव को छोड़ा था वहाँ से कम से कम उसकी दूरी हजार से दो हजार किलोमीटर की थी, साधन के अभाव में पैदल चलना ही स्वीकार किया, जिसका दृश्य टीवी चैनलों के माध्यम से देखते रहे थे। भूखे प्यासे मजदूर अपने जीवन उपयोगी वस्तुओं को अपने कंधे पर टांगे हुए, अपने छोटे-छोटे बच्चों के साथ माताएं और बहनें भूखे प्यासे कई सौ किलोमीटर की दूरी तय करते हुए अपने गांव पहुँचे थे। उनकी वेदना को समकालीन कहानीकारों ने बखूबी अपनी कलम से विस्तार दिया है इस क्रम में हम प्रहलाद चन्द्र दास की कहानी 'लॉकडाउन' में देख सकते हैं। इस कहानी में गांव से आकर शहर में बसे कामगारों कि लॉकडाउन के कारण हुई दयनीय स्थिति का हृदय विदारक चित्रण किया गया है। रोजगार की तलाश में बोकारो में आकर बसे महेश और उसकी पत्नी सुनीता एक मोमो की दुकान चलाकर अपनी पारिवारिक जीवन को धकेल रहा था। अनिश्चित कालीन लॉकडाउन ने इस परिवार की वर्तमान स्थिति को और भी जर्जर बना देता है। गांव कि बेरोजगारी अवस्था से ऊबकर शहर की ओर रुख किए हुए लाखों करोड़ों मजदूरों व कामगारों की कहानी महेश और सुनीता के माध्यम से व्यक्त किया गया है। लॉकडाउन के कारण महेश और सुनीता को परिवार चलाने काफी असुविधाओं का सामना

करना पड़ रहा था घर भाड़ा देने के लिए उसके पास पैसे नहीं थे और नहीं खाने के पैसे थे, ऐसी स्थिति में महेश और सुनीता की नहीं बल्कि देश के हर कोने में इसके जैसे परिवारों की भी स्थिति यही थी। लॉकडाउन की दो तरफा मारने श्रमिक, मजदूर, छोटे व्यवसायी, रेहड़ी, रिक्षा चालक और वाहन चालक तमाम कामदारों के रोजगार चले जाने से मानसिक रूप से उत्पीड़ित हो रहे थे। दूसरी तरफ पारिवारिक दबाव, बच्चों की भूख बीमारी अलग से परेशान कर रही थी, उन लोगों के पास जब आप पूँजी के नाम पर कुछ दिनों तक खाने की व्यवस्था थी वो व्यवस्था भी रोजा में बदलना शुरू हो जाता है। अंततः वह अपने परिवार की सुरक्षा के लिहाज से पैदल ही अपनी गांव की तरफ रुख करता है।

साहित्यकार एक संवेदनशील प्राणी होता है वह अपनी संवेदनाओं को साहित्य के रूप में समाज के समक्ष प्रस्तुत करता है। साहित्य समाज में घट रही घटनाओं का विवरण प्रस्तुत करती है। कोरोना के कारण समाज में घट रही घटनाओं पर समकालीन साहित्य कारों की पैनी दृष्टि रही। साहित्यकारों ने अपनी सुविधा के अनुसार साहित्य के विविध रूपों में व्यक्त किया आर्थिक रूप से संपन्न हो या विपन्न सभी स्वयं को बचाने में लगे हुए हैं। ऐसे दौर में साहित्यकारों की संवेदनाएं और ज्यादा मुखरित हो रही है साहित्य अनुभूति और संवेदनाओं का ही लेखा जोखा है। समाज में जहाँ महामारी का दौर चल रहा हो ऐसे समय में साहित्यकार अपनी संवेदनाओं को कैसे निज तक समेट सकता है, साहित्यकार की संवेदनाएं व्यष्टि न होकर समष्टि होता है तो ऐसे दौर में साहित्य का खुद को समाज से कैसे दूर रुख सकता है। समाज में घट रही हर घटनाओं पर साहित्यकार की पैनी दृष्टि होती है उस पैनी दृष्टि में अनुभूति के साथ संवेदनाएँ

होती है। उसी संवेदनाओं के आधार पर साहित्यकार साहित्य सृजन करता है। कोरोना महामारी के दौरान सामाजिक विद्रूपताएँ और समस्याएँ भयावह रूप में उभरकर सामने आई थी। उन सब गतिविधियों का लेखाजोखा साहित्यकारों ने अपनी साहित्य में किया। कोरोना काल में कई घटनाएँ मानवी संवेदनाओं को झकझोर दिया है। अपने बीमार पिता को ज्योति पासवान साइकल से बारह सौ किलोमीटर की दूरी तय करते हुए अपने घर वापस लौटता या महाराष्ट्र में कार्यरत मजदूर पैदल ही अपने घर के लिए निकालना और रेल दुर्घटना का शिकार होना जैसे घटनाएँ किसी भी संवेदनशीलता प्राणी को विचलित कर सकता है। संप्रदायिका की आड़ में राजनीति रोटियाँ सेंकने वालों के लिए अमृत और याकूब की कहानी कलेजे पर फफोले का काम करती है, कहीं विपदा पर इंसानियत हावी था तो कहीं है वानियत, इसका उदाहरण हम राजेन्द्र कुमार कन्नौजिया की कहानी 'सोशल डिस्टेंसिंग' में देख सकते हैं। इस कहानी में वर्तमान समय में डॉक्टरों के साथ हो रहे अमानवीय व्यवहार को दिखाने का प्रयास किया गया है इस कहानी का नायक डॉक्टर अजय जो पास के एक सरकारी अस्पताल में डॉक्टर है। कोरोना काल में स्वयं की परवाह न करते हुए अपने डॉक्टर धर्म का पालन करते हुए दिन—रात कोरोनाके मरीजों की सेवा करता है लेकिन बदले में उसे क्या मिलता है? जो मकान मालिक बेटे की तरह रखता था आज कोरोना और पड़ोसी के डर से घर से निकाल देता है।

इस कहानी को पढ़ने से स्पष्ट जाता है कि मनुष्य स्वार्थी है, जीवन के प्रति जो जिजीविषा है उसके लोभ में पड़कर मानवता को भूल जाता है। दिन—रात मरीजों की सेवा करने के बाद जब वो थका हारा वापस घर आता है तो उस घर में प्रवेश नहीं मिलता है, प्रवेश न मिलने

पर भी वह लगातार कोरोना रोगियों की सेवा करना की अपना परम कर्तव्य समझता है, सोच सकते हैं कि हम कैसे समाज में जी रहे जो इंसानियत को बचाने के लिए दिन रात अपनी मृत्यु की परवाह न करते हुए भी अपने जीवन को दांव पर लगा दिया है उस डॉक्टर के साथ पड़ोसी अमानवीय व्यवहार करते हैं सिर्फ इसलिए कि वह करोना के मरीजों का ईलाज करता है और उससे सोसाइटी में करोना फैलने का डर है। वह लाख कोशिश करने के बावजूद भी उसे घर में प्रवेश नहीं मिलता है। जिसके घर में वो रहता था उस घर के मालिक के साथ पारिवारिक रिश्ता अच्छा होने के बावजूद पड़ोसियों के दबाव में उस मानवीय रिश्ते को भी भूल जाना पड़ा, कहानी का इस कहानी के माध्यम से दिखाने का प्रयास करते हैं की विपदाओं के अवसर में मनुष्य अपनी मानवीय संवेदनाओं को ताक पर रख देता है। डॉक्टर के जीवन से संबंधित अगली कहानी के क्रम में सरिता कुमारी की कहानी 'चलो घर चलें' देख सकते हैं। इस कहानी में भी मेडिकल की छात्र के साथ अमानवीय व्यवहार को दर्शाया है। मेडिकल की अंतिम वर्ष पढ़ाई कर रहे डॉक्टर अभय को भी अपने भाड़े के घर से विदा होना पड़ा था इसके पीछे का कारण भी वहीं को रोना रोगियों की देखभाल। डॉक्टर अब भी अपने धर्म को बखूबी निभाते हुए भी मानवता का मिशाल खड़ा किया। जिसके घर से उसे विषम परिस्थिति ने निकाला गया था, उस घर के मालिक को उसी के अस्पताल में उसी की देख रेख में कोरोना से मुक्त किया गया। इस कहानी की एक ऐसी घटना भी सामने आती है जहाँ अमानवीयता की परकाष्टा देखने को मिलती है। कोरोना के कारण स्वजन की हुई मृत्यु पर उतना दुख नहीं जितना की उनके शरीर पर पड़े अमूल्य स्तुओं से है "अरे! नहीं अभय उनका कहना था कि उनका आदमी

तो गया, अब करुणा वाली डेड बॉडी से क्या मतलब उन्हें, वह तो परेशान थे कि पेसेंट के पास जो लेटेस्ट आईफोन और सोने की चैन और अंगूठी थी वह कहाँ गई? उसी के लिए हड़कंप मचा रखा था उन्होंने मिलते ही शांत हो गए और फिर चलें गए¹, परिकथा, जनवरी फरवरी 2021 पृष्ठ 81 इसके बाद सुधांशु गुप्त की कहानी छींक में एक अलग तरह की भयावहता नजर आती है। आमदिनों मेंछिंक आने पर किसी ध्यान नहीं जाता है। एक स्वभाविक स्वत प्रक्रिया है जो गाहे—बगाहे किसी व्यक्ति को कभी भी हो सकता है लेकिन कोरोना काल में छींक आना कोई स्वभाविक क्रिया नहीं, बल्कि कोरोना के लक्षण मान लिए गए मनुष्य छींक से इतने आतंकित हो सकते हैं यह माजरा कोरोना काल में ही देखने को मिला। कहानीकार ने इस कहानी के माध्यम से दिखाने का प्रयास किया है कि इस समय छींक आना स्वभाविक क्रिया नहीं बल्कि आतंक का माहौल तैयार करता है जब तक यह छिंक अपने तक सीमित थी तो स्वयं आतंकी था लेकिन जब छिंक उसकी पत्नी को आता है तो यह आतंक व्यशिष्ट ना होकर समष्टि हो जाता है। व्यक्ति इतना आतंकीत हो जाता है कि तरह—तरह के डरावने सपने भी दिन में आने लगते हैं, छींक आना स्वभाविक क्रिया न होकर कोरोना काल की एक आतंकीत करने वाले लक्षण के रूप में स्वीकृत की गई और उससे होने वाली भयावता को कहानीकार में अपने व्यक्तिगत अनुभव के माध्यम से व्यक्त किया²। अब उसे छिंक नहीं आ रही है। भीतर से भी लग रहा है कि तबियत कुछ ठीक हो गई है मन भी कुछ ठीक सा हुआ लेकिन तभी उसने किचन में से पत्नी के चीखने की आवाज सुनी घइस बार वो कुछ ज्यादा ही टल गया। उसे लगा की उसने अपनी बीमारी पत्नी को दे दी है। पत्नी से यह बीमारी दोनों बेटों को संक्रमित

होगी, अब पत्नी और बेटे डर के साए में जियेंगे उसे लगा हर घर की यही स्थिति है, पूरे देश की यही स्थिति है। दुनिया की यही स्थिति है वह दोबारा अपने दीवान पर लेट गया है, पता नहीं आप किसी कब सीखा जाए³। विदेशी पृष्ठभूमि पर लिखी कहानी अर्चना पैन्यूली की “वन मीटर डिस्टेंस” है। इस कहानी की पृष्ठभूमि भले ही विदेशी हो फिर कहानी की परवेश भारतीय शिक्षा व्यवस्था से काफी मिलता—जुलता है, हालांकि कोरोना काल के दौरान यहाँ शिक्षा व्यवस्था पूरी तरह ठप रही कुछ समय के लिए स्कूल खुले भी थे पर करुणा के बढ़ते केस के कारण बंद कर दिया गया था। अर्चना पैन्यूली ने इस कहानी के माध्यम से ये दिखाने का प्रयास किया है कि वर्चुअल शिक्षा भले ही तकनीकी रूप से विद्यार्थियों में विकास करता है लेकिन वास्तविकता इससे कोसों दूर है दो महीने के कोरोनटाइंज के बाद जब स्कूल में बच्चे दाखिल होते हैं तो पांदियों को देखकर उनका मन काफी विचलित हो जाता है, बड़ों को समझाना आसान है पर बच्चे के मन को समझाना उतना ही कठिन स्कूल में शिक्षक की कई जिम्मेदारियां बढ़ गई थी, स्कूल की व्यवस्था पहले जैसी नहीं थी, हर जगह साबुन और सैनिटाइजर की व्यवस्था की गई थी लेकिन बच्चे मौका मिलते ही कोरोना के नियमों का उल्लंघन कर स्वच्छंद होजाते थे। शिक्षक की अपनी सीमाएं होती हैं और विद्यार्थियों की अपनी सीमाएं हैं कक्षा में नियंत्रण संभव है लेकिन प्लेग्राउंड मैं बच्चों की अपनी चलती है वहाँ पर उस नियंत्रण करना एक तराजू में कई मैंदक को तौलने जैसा होता है, इस कहानी की पृष्ठभूमि भले ही विदेशी हो लेकिन भारतीय शिक्षा व्यवस्था में भी क्रमशः ऐसे ही घटना कोरोना के दौरान देखने को मिलती है। “सवा दो महीने के लॉकडा उनके बाद स्कूल खुले तो

बच्चे और अध्यापकों ने इसका स्वागत किया। वीडियो कॉन्फ्रेन्सिंग, सॉफ्टवेर पर डिस्टेंस, वर्चुअल टीचिंग सी अकुलाहट होने लगी थी दृमन कर रहा था अब भौतिक रूप से आमने-सामने होकर ही पठन-पाठन किया जाए”³

नर्मदेश्वर की कहानी करनटीन में शहर की भ्रष्टाचार की जो लपटें उठी है उसकी चिंगारी गांव तक फैल गयी। आजकल गाव गाँधी का गांव नहीं बल्कि भ्रष्टाचारियों का गांव बन गया है। कहानीकार ने गांव की मुखिया के माध्यम से वहाँ के भ्रष्टाचार नीतियों को प्रकाश में लाया है। धार्मिक लोगों की कथनी और करनी को भी स्पष्ट किया है। आपदा में अवसर का जो स्लोगन जो हमारे माननीय प्रधानमंत्री ने दिया है उसका पूरा फायदा इस कहानी का पात्र मुखिया उठाता है अन्य शहरों से लौटी हुई ग्रामीणों को मुफ्त में अनाज देने की बात सार्वजनिक करता है लेकिन दूसरी तरफ अपने बेटे को हिदायत देता है कि अनाज की बोरियां गांव तक नहीं आनी चाहिए। राजनीति कि दोहरे चरित्र को विपदा के समय में प्रकाश में लाने का काम कहानीकार ने किया है। हरिहर राय की कहानी मोबाइल को अगली कड़ी के रूप में देख सकते हैं। इस कहानी में कहानीकार ने साधारण कामगार दर्जी छोटेलाल की कर्मठता और ईमानदारी को केंद्र में रखकर एक संदेश देना चाहते हैं कि ऐसी विषम परिस्थिति ने जहाँ बड़े से बड़े उद्योगपति अपने लाभ के लिए नैतिकता को ताक पर रख देते हैं। लेकिन ऐसी विषम परिस्थिति में भी छोटेलाल ने अपनी नैतिक जिम्मेदारी को त्यागता नहीं है। ऑनलाइन स्टडी के कारण छोटेलाल की बेटी के लिए अत्याधुनिक मोबाइल की जरूरत है। लॉकडाउन के कारण ऐसे ही आमदनी का कम हो जाना यार बेरोजगार हो जाने की स्थिति में मोबाइल का क्रय आर्थिक रूप से विपन्न कर

सकता है। छोटेलाल के यहाँ काम करने वाली स्त्रियों में से किसी एक का मोबाइल उसके दुकान में छूट जाता है। छोटेलाल चाहता तो वो मोबाइल को लेकर अपनी जिम्मेदारी से मुक्त हो सकता था लेकिन नैतिकता ने उसे किसी और के मोबाइल को अपना बताकर अपनी पत्नी या बेटी को देना सही नहीं समझा। वह जानता है कि ऑनलाइन स्टडी में मोबाइल की कितनी जरूरत है और अपनी असमर्थता को भी जानता फिर भी वो किसी अन्य को मोबाइल को अपना बताना स्वीकार नहीं करता। घटना बहुत छोटी है लेकिन कहानीकार हरिहर राय ने एक छोटे कामगार लोगों के मेहनत और ईमानदारी की जो तस्वीर बनाई है वह विषम परिस्थितियों में भी चमकता है। प्रसिद्ध कहानीकार हरिहर राय कोरोना कालीन कहानियों की पढ़ताल करते हुए कहते हैं कि “पिछले दिनों प्रकाशित पत्रिकाओं में कुछ बेहतरीन कहानियाँ पढ़ने को मिली। इन कहानियों को पढ़ते वक्त मुझे कहानी के अंदर और बाहरी स्वरूप में एक बदलाव दिखाई दिया और यह बदलाव कहानी को एक नए धरातल पर ले जा रहा है। कहानी के न सिर्फ विषय बदल रहे हैं बल्कि कहानी कहने का अंदाज भी बदल रहा है। कहानी एक बेहतरीन मानवीय दुनिया की वकालत करती नजर आती है। यह कहानी की यथार्थवादी परंपरा को आगे बढ़ाने का एक सकारात्मक कदम है, जिसमें हमारे समय के सच, पाखंड आंतरिक और बाहरी बर्बरता वह क्रूरताएं देखी जा सकती है, साथ ही इन कहानियों में मानवीयता का तकाजा भी एक अंत सलिला की तरह मौजूद है। ये कथ्य, शिल्प और भाषा टीआई अलग धरातल पर पाठकों को ले जाती है।”⁴

अतः कहा जा सकता है कि कोरोना काल में कहानीकारों ने हर समस्या और विषम परिस्थिति पर अपनी पैनी नजर गड़ाए रखा और

अपनी कहानियों के लिए प्लॉट का निरीक्षण करता रहा इस काल के दौरान हुई घटनाओं का लेखा जोखा हम इन कहानीकरों के के लेखनी में देख सकते हैं। "कोरोना काल में साहित्य को नए विषय वस्तु और नई संवेदना से संयुक्त कर उसकी परिधि को विस्तार किया। इस साल के साहित्य में हमें, संवेदनशील बनाया है, मनुष्य को उसकी औकात का अहसास कराकर कोरोना के घातक प्रभाव तथा उसकी विभीषिका से सचेत किया है, संतावना और धैर्य प्रदान कर अपनी सामाजिक तथा मानवीय भूमिका का निर्वाह किया। कोरोना ने हमारी सर्जनशक्ति को कुंठित नहीं, प्रेरित किया है वह दिन दूर नहीं जब साहित्य का नया इतिहास लिखा जाएगा तो पूर्ण काल का साहित्य उसका एक अध्याय अवश्य होगा।"⁵ अब तक इस काल को केंद्र में रखकर 20 से अधिक कहानियाँ लिखी जा चुकी हैं उन सभी कहानियों की चर्चा यहाँ संभव नहीं हो पा रही है। हर कार्य की अपनी सीमा होती है और उसी सीमा में बंधकर कार्य का संचालन भी करना होता है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए मैंने पत्रिकाओं के माध्यम से जो कहानियाँ मेरी नजरों से होकर गुजरी उन्हीं पर मैंने यह आलेख तैयार किया। संभवतः कई प्रसिद्ध कहानीकार को मैं अपनी असमर्थता के कारण पढ़ नहीं पाया इसलिए यहाँ उनकी कहानी का उल्लेख नदारद है। कोरोना काल के दौरान इतनी सारी घटनाएं घटीं की उन विषयों पर और भी कहानियाँ लिखी जा सकती हैं, मुझे लगता और आगे लिखी भी जाती रहेंगी। "अशोक वाजपेयी ने तथा अन्य साहित्यकारों ने यह अभिमत दिया है कि साहित्य का एक काल कोरोना काल भी होगा वास्तव में इस काल नहीं शक्ति कारों को एक नई संवेदना दी है हिंदी भोजपुरी गुजराती मराठी आदि भारत की तमाम भाषाओं में दिल को छू लेने वाली तथा करुणा

संकट से सावधान करने वाली अनेक रचनाएँ आ रही हैं शारीरिक दूरियां भले ही बड़ी हो लेकिन तज्जनित पीड़ा को शब्दों में तथा साहित्य के अन्य विधाओं में पूर्ण संवेदना के साथ अभिव्यक्त हुआ है।"⁶

संदर्भ :

1. परिकथा, संपादक—शंकर, जनवरी—फरवरी, 2020, पृष्ठ—81
2. नया ज्ञानोदय, संपादक—मधुसूदन आनंद अप्रैल—जून 2020 ,पृष्ठ— 32
3. नया ज्ञानोदय, संपादक—मधुसूदन आनंद, अप्रैल—जुलाई 2020,पृष्ठ— 33
4. परिकथा, संपादक—शंकर, मार्च—अप्रैल 2021, पृष्ठ— 91
5. नईधारा, संपादक, शिवनारायण, दिसम्बर —जनवरी 2021, पृष्ठ—19
6. नईधारा, संपादक, शिवा नारायण, दिसम्बर जनवरी 2021, पृष्ठ—18

• • • • • • •

समाज के हर रंग से वाकिफ़ : व्यंग्य सप्राट हरिशंकर परसाई का साहित्य

साहित्य और समाज का सम्बन्ध अटूट है। रचनाकार अपने साहित्य में अपने तत्कालीन समाज के हर कोने से उसकी सभी कुरुपताओं को प्रमुखता के साथ प्रतिबिम्बित करने का प्रयत्न करता है। वही साहित्य प्रासंगिक और शाश्वत बन सकता है जो वैयक्तिक जीवन की अनुभूतियों को आत्म केन्द्रित बना कर उसका चित्रण करता है। परसाई जी स्वातंत्र्योत्तर कालखंड के लेखक है। स्वातंत्र्योत्तर कालखंड में समाज, राजनीति, आर्थिक, धार्मिक क्षेत्र में विषमताएँ, कुरुपताएँ, विद्वुपताएँ निर्मित हुई थी। समाज में कुप्रथाएँ चारों ओर प्रचलित थी। आजादी मिलने के पश्चात् स्वराज्य को लेकर जो सपने देखे थे, वे पूरी तरह से धूमिल हुये थे देशवासियों के सपने चूर होकर टूटकर बिखर गये थे। आज समाज, राजनीति, धर्म, संस्कृति आदि सभी क्षेत्रों में भ्रष्टाचार ने अपनी जड़ें जमाई हैं। हर कोई केवल चाहता है कि भ्रष्टाचार का उन्मूलन हो जाए, परंतु भ्रष्टाचार मिटाने के सही उपायों का प्रयोग कोई भी करना नहीं चाहता क्योंकि हर कोई जानता है कि इसके लिए व्यवस्था में व्यापक परिवर्तन करने पड़ेंगे। समाज के कर्णधारों को इस बात का डर है कि व्यवस्था में परिवर्तन लाने से उनकी स्वार्थ सिद्धि में बाधा पड़ जाएगी। इसलिए वे भ्रष्टाचार निर्मूलन के लिए ऐसे उपाय खोज निकालते हैं, जिससे भ्रष्टाचार को अवसर मिल जाए।

आजादी के उपरांत भारत की जनता को लगा कि अब हमारे सपने पूरे होंगे। जिसके लिए हमने स्वतन्त्रता संग्राम किया, जुलूस निकाले, जेल में गये, कड़ी से कड़ी सजा भुगत ली, लेकिन स्वातंत्र्यपूर्व देश की जनता ने जिन क्षेत्रों में ऊँचाई पर जानेवाले भारत को देखना चाहा, वह सपने स्वतन्त्रता के पश्चात् बिखर

विनीता तिवारी (शोधार्थी)

हिन्दी विभाग

कल्याणी विश्वविद्यालय, पश्चिम बंगाल

गये, क्योंकि स्वार्थलोलुप तत्व जगह—जगह उभारने लगे। यह सब परसाई ने इन सबको देखा यही कारण है कि अनेक कहानियों का जन्म हुआ। इस कारण ही उन्होंने भारतीय राजनीति में व्याप्त अवसरवाद, मूल्यहीनता और अस्थिरता पर करारा व्यंग्य किया है। हरिशंकर परसाई जी की कई कहानियाँ ऐसी हैं, जिनमें भ्रष्ट नेता की सत्तालोलुपता दिखाई देती है। हमारे देश में आज हर क्षेत्र में भ्रष्टाचार व्याप्त है। नेताओं के भ्रष्ट चरित्र को परसाई जी इस प्रकार नग्न कर दिया है— “हमारी आँखे आप की विराटता देखने की इतनी आदी हो गयी हैं कि हमें बारीक चीज नहीं दिखती। हमें भ्रष्टाचार दिखा भी तो उसमें से हमें आपकी ही छवि दिखेगी, क्योंकि हमारी आँखों में तो आपकी ही सूरत बसी है।”

हरिशंकर परसाई के लेखन की यह बहुत बड़ी विशेषता है कि वे गलत चीजों को तोड़कर उसे नये ढंग से बनाने के लिए उस पर चोट करते हैं। परसाईजी ने आधुनिक भारतीय समाज में बढ़ते हुए वर्ग—वैषम्य के स्तर पर स्तर की खोज की है, वे भारत के इतिहास में पूरी तरह ढूबे हैं, पुरातन दर्शन, धर्मनीति, आधार, मान्यताओं से परिचित हैं। उन्हें भारतीय मन के ऐतिहासिक विकास की जानकारी है। उन्होंने भारतीय इतिहास के प्रत्येक युग के सामाजिक सम्बन्धों का विश्लेषण किया है, इसलिए परसाईजी आधुनिक समाज के शात्रुतापूर्ण अंतः विरोधों को पकड़ने में सफल हुए हैं। परसाईजी ने संसदीय राजनीति के कुछ बहुत ही महत्वपूर्ण मुद्दों को व्यंग्य के लिए चुना है। पूँजीवादी प्रतिष्ठानों के हिमायती समाजवादी ढाँचे की राजनीति में जिस भाषा का व्यवहार करते हैं, उसकी पोल खोलने

में परसाईंजी की सीधी दिलचस्पी है। 'सोने का सॉप' में यह पंक्तियाँ परसाईंजी की व्यंग्य क्षमता का उदाहरण कही जा सकता है। गड़े सोने में बड़ी उलझन है। एक तो उसका रख वाला सौंप होता है फिर वह ट्रस्टी दयालूता, भलाई और धार्मिकता का रूप धारण किये रहता है, वह मारा नहीं जाता और अगर उसे मीठे स्वरों में फुसलाओं तो वह भाग जाता है और सोना साथ ले जाता है।² पूँजीवादी के हिमायतियों पर यह एक करारा चौट है। परसाईंजी जानते हैं कि चाहे इस पार्टी का शासन हो चाहे उस पार्टी का, उनकी लड़ाई किसी सरकार के खिलाफ नहीं बल्कि वे वर्ग के खिलाफ है। इस विरोध के अन्दर पूँजीवादी सामन्तवादी ताकतों का विरोध है जो जनता के विकास में बाधक है।

धर्म भारतीय संस्कृति का एक अभिन्न अंग है। भारत में कई धर्मों को मानने वाले लोग निवास करते हैं। प्राचीन युग से ही भारत में विभिन्न धर्म, संस्कृति, संप्रदाय आदि का निवास स्थान रहा है। भारतीय संविधान के अनुसार भारत एक धर्मनिरपेक्ष गणराज्य है। यह धर्मों की विविधता का देश है। भारत धन-धान्य से संपन्न देश हुआ करता था, यहां की ऐगोलिक सौंदर्य से अनेक विदेश आकृष्ट होते थे। यही कारण है कि भारत में एशियाई और यूरोपीय देशों से अनेक लोग भारत आए और उनके साथ उनका धर्म-संप्रदाय भी भारत में आ गया। आज के युग में धर्म के नाम पर पाखंड का बोलबाला दिखाई देता है। धर्माधिता की जड़े भारत में सबसे ज्यादा फैली हुई है। भारत में धर्म के नकली उपासकों की बाढ़ सी आ गई है। धर्म मनुष्य को सतमार्ग पर ले जाता है, लेकिन धर्म के कुछ झूठे प्रचारक धर्म के नाम पर भटकाने का काम कर रहे हैं। परसाईंजी ब्राह्मण, मुल्ला, पादरी किसी को भी नहीं छोड़ते हैं। उनके व्यंग्य वाण से कोई भी नहीं बच पाया है,

हरिशंकर परसाईं ने अपनी रचना 'शर्म की बात पर ताली पीटना' नामक रचना में धर्म के खोखलेपन को उजागर किया है, वे लिखते हैं— "मुझे धार्मिक समारोहों में बुला लिया जाता है। सनातनी, वेदांती, बौद्ध, जैन सभी को बुला लेते हैं, क्योंकि इन्हें न धर्म से मतलब है, न संत से, न उनके उपदेश से। ये धर्मोपदेश को समझना भी नहीं चाहते। पर ये साल में एक-दो बार सफल समारोह कराना चाहते हैं और जानते हैं कि मुझे बुलाकर भाषण करा देने से समारोह सफल होगा, जनता खुश होगी और उनका जलसा कामयाब हो जायेगा।"³

हरिशंकर परसाईं कर्मकांड के घोर विरोधी है। भारत में कुछ लोग कर्मकांड का सहारा लेकर जनता को पूरी तरह से शोषण कर रहे हैं। यही कारण है कि परसाईं जी कर्मकांड करने वालों पर कटु व्यंग्य करते हैं। वे हर जगह कर्मकांड का विरोध करते आए हैं, जहां भी उन्हें लगा उस पर करारा व्यंग्य किया है, यही कारण है कि उन्हें कई मुसीबतों का सामना करना पड़ा है। उनका मानना है कि नैतिक नियम, धर्म-नीति कर्मकांड मनुष्य को भयभीत कराते हैं, तात्पर्य यह है कि कर्मकांड एक ढकोसला है, उससे भयभीत न होकर उसका डटकर मुकाबला करना चाहिए।

हरिशंकर परसाईं तत्कालीन समाज में बढ़ रहे धर्म के नाम पर अराजकता के खतरे को भली-भांति समझ रहे हैं। यद्यपि धर्म का महत्व मनुष्य के जीवन में अनन्यसाधारण है। विज्ञान यह बता सकता है कि मनुष्य कितने दिन जिंदा रह सकता है, लेकिन धर्म मनुष्य को जीवन कैसे जीना है, यह सिखाता है धर्म। धर्म ही ऐसा तत्व है जो मानव मन की असीम कामनाओं को सीमित करने की क्षमता रखता है। लेकिन धर्म के नाम पर पाखंड का विस्तार होना गलत है। परसाईं जी विस्तारित होती इसी पाखंड का पर

पैरोक्तर

विरोध करते हैं। जाति के नाम पर, धर्म के नाम दंगे—फसाद आदि इन सभी का खंडन परसाई जी की रचनाओं में देखने को मिलता है।

संस्कृति मनुष्य के आदर्शों, आचार, विचारों, कार्यों, अनुष्ठानों और जीवन के मूलभूत सत्यों को संस्कृति के रूप में जाना जाता है। संस्कृति के अंगों में धर्म, विवाह, उत्सव, वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीत, नृत्य आदि ललित कलाओं का भी समावेश होता है। हमारी संस्कृति निश्चित ही महनीय है लेकिन संस्कृति को हर अंग में विकृतियाँ दिखाई देती हैं। हमारी संस्कृति को हेय मानकर विदेशी संस्कृति हम अपनाने लगे हैं। आज का भारतीय सांस्कृतिक परिवेश विकृतियों विसंगतियों से युक्त है। प्राचीन और नवीन सांस्कृतिक स्थिति एक विचित्र भी कश्मकश की स्थिति में झूल रही है। न तो पुराने आड़बर परंपराएँ रुढ़िगत संस्कार, अंधविश्वास आदि छूट पा रहे हैं और नहीं कोई दृढ़ व नवीन सांस्कृतिक परिवेश बन पा रहे हैं। परसाईजी ने संस्कृति के इसी द्वास का चित्रण किया है। आज की संस्कृति में मानव संबंधों के भीतर प्रेम का नैसर्गिक स्वरूप ही नष्ट हो गया है। उनकी 'एक लड़की पाँच दीवाने' कहानी में इसी बात का संकेत है— 'पर दीवानों ने अपनी हरकतों से उसे भान करा दिया कि उसके पास रोटी बनाने, कपड़े धोने और घर साफ करने के सिवा कुछ और भी है, जो घर के नहीं बाहरवालों के काम का है। यों उम्र पाकर हर लड़की को यह बोध हो ही जाता है, पर इसे थोड़ा पहले ही दीवानों ने करा दिया।'⁴ वास्तव में आज के युग में संबंधों की महानता नष्ट हो गया है और चारों तरफ विकृतियाँ फैल गयी हैं।

'समाज' परसाई जी के व्यंग्य लेखन का मूलाधार है। समाज में स्थित विभिन्न अनमेल विवाह, भ्रष्टाचार, महँगाई, अनैतिक संबंध, जाति व्यवस्था, शिक्षा व्यवस्था, धर्म के ठेकेदार, पूँजीपति, आबादी, मकान की समस्या, यातायात, इंजीनियर आदि समाज के हर अंग परसाई जी की रचनाओं में शामिल है। निःसंदेह हम हैं कह सकते हैं कि परसाई जी अपने समाज से जुड़े हुए रचनाकार हैं, उनकी रचनाओं में समाज का हर पहलु सौमने आता है।

संदर्भ :

1. परसाई रचनावली, हम वे और भीड़, पृ. 140
2. पगड़ंडियों का जमाना, हरिशंकर परसाई, पृ. 45
3. परसाई रचनावली, भाग—1, संपादक कमला प्रसाद, पृ. 332
4. एक लड़की 5 दीवाने परसाई रचनावली भाग— 5, पृ. 25

निराला के काव्य में मानवीय चेतना

महामानव निराला बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न कलाकार थे। उन्होंने साहित्य की प्रत्येक विधा को अपनी रचनाओं से समृद्ध किया। निराला का रचनाकाल 1916 लेकर 1961 तक परिव्याप्त है। निराला के व्यक्तित्व और काव्य का अध्ययन यह प्रमाणित करता है कि दोनों में अटूट एवं प्रगाढ़ संबंध था। उनका समग्र जीवन संघर्षों में व्यतीत जाना जा सकता है। उनकी कविता में छायावादी, प्रकृतिवादी राष्ट्रवादी, प्रयोगवादी, रहस्यवादी और मानवतावादी काव्यधाराएँ सम्पूर्ण रूप में पाई जाती हैं। उनके गद्य साहित्य में भी यह स्वर देखा जा सकता है।

निराला का पूरा व्यक्तित्व क्रांतिकारी तत्वों से संघटित था। काव्य तथा जीवन में निरंतर रुद्धियों का मूल रूप से विच्छेद करते हुए इन्हें अनेक संघर्षों का सामाना करना पड़ा है। निराला एक सचेत कलाकार व कवि हैं। निराला सर्वप्रथम साहित्यिक थे। जीवन भर उन्होंने स्वयं को एक सच्चे साहित्य सेवी के रूप में ही प्रस्तुत किया। साहित्य ही उनका जीवन था, अभिमान था, सुख, चैन था। साहित्य रचना ही उनकी साहित्य साधना थी। वही उनकी घर—गृहस्थी, लोक—परलोक, दुःख—सुख सब कुछ था। समाज की अत्यन्त गम्भीर समस्याओं का हल उन्होंने साहित्य द्वारा ही सुझाया था। सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्र की तरह साहित्यिक क्षेत्र में भी किसी परम्परागत विचार, रुद्धि एवं नियमों का पालन निराला ने नहीं किया। वे उसमें भी संयत स्वच्छन्दता चाहते थे।

डॉ. भागीरथ मिश्र के शब्दों में— ‘निराला की प्रतिभा बहुमुखी थी। साहित्य का शायद ही

नगीना लाल दास (शोधार्थी)

कलकत्ता विश्वविद्यालय

ऐसा कोई क्षेत्र हो जिसमें उनकी उर्वर प्रतिभा ने अपना चमत्कार न दिखाया हो। कविनमा आला था, निराला गढ़ाकवाला का अर्थात् ‘गढ़ाकवाला ग्राम’ के कवि निराला कवियों में श्रेष्ठ है। वाली लोकोक्ति सिद्ध करती है, कि जनसाधारण में भी बहुत दूर तक उनकी प्रतिभा का अभिनंदन और गौरव गूंजता था।’’¹

हिन्दी साहित्य में एक से एक ओजस्वी कवि, वीर रस के कवि मिल जायेंगे पर निराला के काव्य में ओज—उदात्त ओज की ऐसी मूलभूत विशेषता हैं जो कि उनकी ललित शृंगारी रचनाओं में देखी जा सकती है। ओज का यह विराट और विस्तृत रूप प्रायः श्रोता और पाठक के मन और हृदय में पूरी तरह समा नहीं पाता। एक ही विषय पर लिखी गई सुमित्रानन्दन पंत, जयशंकर प्रसाद, महादेवी वर्मा और निराला की रचनाओं में हमें जो प्रधान अंतर मिलता है वह निराला के उदात्त विराट ओज के कारण ही है और हम कह सकते हैं कि निराला के इस प्रभूत एवं ओजस्व ओज को न संभाल सकने के कारण ही उन्हें बंधे छंदों का छोड़कर स्वचंद छंदों को आविष्कार करना पड़ा। समस्वरूप चतुर्वेदी के शब्दों में—‘निराला की एक बड़ी विशेषता यह है कि न केवल उन्होंने परंपरा से विद्रोह किया वरन् स्वयं अपनी उपलब्धियों से भी जिन से कालांतर में परंपरा बननी थी।’’² अर्थात् छायावाद के समूचे परिदृश्य पर सबसे बड़े विद्रोही के रूप में निराला की सही ख्याति है। अपने समय की सांस्कृतिक सामाजिक एवं राष्ट्रीय गतिविधियों से निराला पूर्णतया परिचित ही नहीं वरन् प्रभावित भी थे, इतना ही नहीं उनके

ऐरेक्चर

निर्माण में निराला जी का सक्रिय सहयोग भी रहा। छायावादी कवि और उनकी कविता सदा प्राकृतिक वातावरण में फली—फूली और समाप्त हुई। निराला अपने जीवन में इसी प्राकृतिक स्वतंत्रता के पक्षधर थे। वे राष्ट्रीय और सामाजिक दोनों स्तर पर उनकी गहरी पकड़ थी। कोई भी साहित्यकार यदि राष्ट्रीय और सामाजिक स्तर पर नहीं जुड़ता है तो वह महान साहित्यकार नहीं कहला सकता। उसकी कविताओं का समूल स्वर ही मानवतावादी होना चाहिए। जहाँ तक मुझे लगता है पंडित सूर्यकांत त्रिपाठी निराला के काव्य में मानवतावादी का स्वर जिस यथार्थ व नग्न सत्य के रूप में प्रकट हुआ है। वह हिन्दी साहित्य के बहुत कुछ विशेष कवियों के रूप में दिखाई देता है।

प्रस्तुत आलेख के माध्यम से मैंने निराला के काव्य में मानवतावादी चेतना के द्वारा मानवतावाद की परिभाषा, उसका स्वरूप आज के दौर में निराला की मानवतावादी चेतना की जो प्रासंगिकता है उसका औचित्य एवं उद्देश्य कहाँ तक सफल व सार्थक प्रतीत होता है। इत्यादि इन सभी विषयों पर मैंने संक्षिप्त रूप में प्रकाश डालने का प्रयास किया है। आज के दौर में मानवता की चिंता सुरक्षा एवं भविष्य कितना उज्ज्वल है, इस बात पर पुनः चर्चा करने की आवश्यकता हम सबको है। ऐसी समय जब हमारे देश में हाथ रस, वीरभूम जिले के रामपुर हाट में हुई राजनीतिक हिंसा जैसे घटानाएं मानवता को शर्मशार करती हैं। ऐसे कई घटनाएं जो हमें मानवीयता के स्तर पर सोचने के लिए विवश करती हैं कि आज भी जो निम्न व मध्य वर्ग है उसकी रिथिति बहुत दयनीय व चिंताजनक है। हमारी मानवीय संवेदना कहाँ मर चुकी है, उनके सुरक्षा व भविष्य का उत्तरदायित्व किसे कंधों पर है ये आज का एक ज्वलंत प्रश्न व मुद्दा है। आश्चर्य है कि आज

के दौर में भी समाज का निम्न वर्ग, गरीब, मजदूर, किसान, दलित, अति पिछड़ा वर्ग वोट देने का मात्र एक मशीन बन कर रह गया है। वह सिर्फ वोट का एक साधन मात्र है और कुछ नहीं।

मानवतावाद (ह्यूमनिज्म, कैपिटल, एच सेक्युलर) जैसा कोई विशेषण नहीं है। एक सम्पूर्ण जीवन दृष्टि है जो मानवीय तर्क नैतिकता और न्याय का समर्थन करती है और अलौकिक छद्मविज्ञान और अंधविश्वास को नकारती है। अर्थात् मानवतावाद एक लोकतांत्रिक और नैतिक जीवन दृष्टि है जो पुष्टि करती है कि मनुष्य का अधिकार और उत्तरदायित्व है। यह तर्क की भावना में मानवीय और दूसरे प्राकृतिक मूल्यों पर आधारित नैतिकता और मानवीय क्षमताओं के माध्यम से मुक्त अन्वेषण के जरिए एक समर्थन करती है। यह आस्तिक नहीं है और यह वास्तविकता संबंधी अलौकिक दृष्टिकोण को स्वीकार नहीं करता है। मानवतावाद उत्तरोत्तर हमारी प्रजातियों, धरती, और जीवन की एक समग्र संवेदनशीलता को दर्शाती है। मानववाद या मनुष्यवाद दर्शनशास्त्र में उस विचारधारा को कहते हैं, जो मनुष्यों के मूल्यों और उनसे संबंधित मसलों पर ध्यान देती है। निराला ने अपने काव्य के माध्यम से मनुष्यों के इसी मूल्यों और उनसे संबंधित मुद्दों और समस्याओं पर बड़ी गम्भीरता और संवेदनशीलता के साथ उसको सभी के समक्ष प्रकट करने का सफल प्रयास किया है।

मानवीकरण छायावादी कविता की एक प्रमुख विशेषता है। प्रकृति पर चेतना का आरोप तो भारतीय साहित्य में बहुत प्राचीन काल से होता आया है। किंतु उसका यह स्वरूप नहीं था जो हिन्दी की छायावादी कविता में मिला है। मानवीकरण की यह प्रेरणा छायावादियों को बंगला के माध्यम से पाश्चात्य साहित्य से मिली है।

इनमें प्रवृत्ति को मानवीय भूमिका पर अनेकों रूपों में चित्रित किया गया है। 'बादल राग' इसका सुंदर उदाहरण है। इसके अतिरिक्त 'कुकुरमुत्ता' कविता जिसमें कवि ने गुलाब को उच्च वर्ग के प्रतीक माना है तथा कुकुरमुत्ता यथार्थ का नमूना है। कुकुरमुत्ता समाजवादी सम्प्रदाय का प्रतिनिधि है और पूँजीवादी लोगों का जो गरीबों का खून चूसता है। "अबे सुन बे गुलाब भूल मत, गर पाई खुशबु रंगोआबखून चूसा खाद का तने आशिष्ट डाल पर इतरा रहा, कैपिटलिष्ट।"³ 'कुकुरमुत्ता' निराला का सुप्रसिद्ध प्रतीकात्मक उपन्यासात्मक काव्य है। कुकुरमुत्ता के माध्यम से कवि ने तत्कालीन समाज की दोषपूर्ण प्रवृत्तियों पर व्यंग्य किया है।

'विधवा' कविता में चिर दुःखिता विधवा नारी का हृदय विदारक चित्र पाठकों को प्रस्तुत किए हैं। अपनी लज्जा को बचाए शुद्र दृष्टि डाले ठहरती रहती है। पर किसी में ऐसा साहस नहीं जो उसे धीरज बंधा सके और सहानुभूति या अपनी कृपा के दो शब्द कह सके। उदाहरण के लिए में पंक्तियां— कौन उसको धीरज दे सके, दुःख का भार कौन ले सके ? यह दुःख, वह जिसका नहीं कुछ छोर है। दैव अत्याचार कैसा घोर और कठोर है। क्या कभी पोछे किसी के अश्रु—जल? या किया करते रहे सबको विकल—कण—सा पल्लवों सा झार गया जो अश्रु भारत का असी से सर गया।"⁴

प्रस्तुत पंक्तियों के माध्यम से कवि भारतीय विधवा की दयनीय स्थिति का वर्णन करते हुए कहता है कि भारतीय विधवा की समाज में अत्यंत दयनीय दशा है। कोई उसके दुःखों को समझ नहीं पाता। क्या कोई समाज में ऐसा व्यक्ति है जो उस विधवा को धीरज व बोझ उठा सके, उसकी सहायता कर सके ? वस्तुतः विधवा के जीवन का दुःख अनंत है, उसका

कोई किनारा नहीं है। ऐसा लगता है कि विधाता भी उसके दुःख को हर नहीं पा रहे हैं। उसके आंसू उसी प्रकार झरते हैं जैसे वृक्षों के पत्तों से ओस के कण झरते रहते हैं। इस प्रकार कवि ने कविता के अंत में पूरे समाज से विधवा स्त्रियों के प्रति सहानुभूति रखने व उनके दुःखों को दूर करने का आवाहन किया है।

डॉ. भागीरथ के शब्दों "मानवता धर्म ही निराला जी का सहज धर्म रहा है। निराला जी का समस्त काव्य इस मानवता धर्म की व्याख्या, स्थापना और विकास का जन—जन के कल्याण का माग खोलने और विकास कर जन—जन के कल्याण का मार्ग खोलने की अमर गाथा है। उनका समस्त जीवन दर्शन ही मानवतावादी था ऐसा कहे तो कोई अत्युक्ति न होगी। निराला जी का यह मानवतावाद किसी राजनीतिक वाद का परिणाम नहीं था, वरन् वह तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति और कवि की गहरी संवेदना, अध्ययन एवं चिंतन का परिणाम था।"⁵

निराला ने केवल काव्य शैली में ही क्रांति नहीं की, सामाजिक रुद्धियों, सदियों से चली आ रही पुरानी परम्परा व रीति रिवाजों का भी उन्होंने खुला विद्रोह किया। वे स्वच्छन्दता, स्वतंत्रता के सफल प्रेमी थे। समाज में ब्राह्मणवाद के विरोधी थे। प्रसिद्ध समीक्षक व लेखक प्रो. शंभुनाथ 'सरोज स्मृति' को महज एक कविता व गीत न मानते हुए इसे वर्ण व्यवस्था और हिन्दू धर्म के पाखण्डों के विस्तृ एक सशक्त दस्तावेज के रूप में देखने पर दृष्टि प्रदान करते हैं। उनका कहना है— 'यह जन्मदात्री वर्ण व्यवस्था और हिन्दू धर्म के पाखण्डों के प्रति एक करुण आक्रोश का गीत भी निराला को वर्ण थी, जहां कन्या के पिता का गला दोड़ते—दोड़ते सूख जाता है। इस कविता से

यह भी उभरती है कि वर्ण व्यवस्था सिर्फ दलितों के लिए ही बंदीगृह नहीं है, स्त्री की स्वाधीनता में भी एक बड़ी बाधा है।⁶

कहने का तात्पर्य है कि उस दौर में पंडितों व ब्राह्मणों के द्वारा फैलाए गए ब्राह्याडंम्बर, छुआ—छूत, भेद—भाव, पूजा—पाठ, शादी—विवाह के अवसर पर तथा धर्म के नाम पर जो भ्रष्टाचार फैला था निराला जी ने उसका खुलकर विरोध किया बावजूद इसके कि वे स्वयं एक ब्राह्मण थे। निराला को जीवन—यथार्थ की विषमताओं की अच्छी परख व समझ थी। उन्होंने जीवन की उस विषमताओं को बहुत करीब से देखा था जहां सामाजिक विषमता प्रबल थी। निराला ने समाज की उस परिस्थिति को देखा था जहां एक वर्ग दूध की कूल्ली कर रहा था तो एक वर्ग बिना खाए—पीए अन्न के अभाव में भूखों तड़पता था, छटपटाटा था। एक वर्ग ऐसा था जिसके पास कपड़ों की भरमार थी तो वहीं एक वर्ग ऐसा भी था जिसके पास तन ढ़कने के लिए एक वस्त्र भी नहीं था। एक वर्ग ऐसा था जिसके पास कई महल थे तो वहीं जो गरीब, पिछड़ा, उपेक्षित तथा दलित था उसके पास सर छुपाने के लिए एक झोपड़ी भी नहीं थी। कहा जाता है कि समाज तीन वर्गों में विभाजित है निम्न वर्ग, मध्यम वर्ग और पूँजीपति वर्ग। निराला ने इस तीनों वर्गों के बीच जो सामाजिक विषमता थी उसको भली—भाँति देखा समझा और उसके लिए संघर्ष किया और यही संघर्ष उनकी मानवतावादी सोच को उनकी कई कविताओं में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है जैसे—तोड़ती, पत्थर, भिक्षुक, विधवा, दीन, आराधना, अणिमा तथा कण, बादल राग, कुकुरमुत्ता एवं अन्य संग्रहों में भी प्राप्त होते हैं।

डॉ. भागीरथ मिश्र लिखते हैं कि निराला का सम्पूर्ण जीवन इस बात की साक्ष्य देता है कि वे दीन—दुखियों, अपाहिज—अपंगों एवं

अनाथ—असहाय लोगों को सदा से सहारा देते आए हैं। जनकल्याण की अभिलाषा सतत उनके मन में जागृत थी। पूँजीपतियों द्वारा कुचला जाता हुआ सर्वहारा वर्ग और उसकी समस्त विभीषिकाएँ उन्होंने खुली आँखों से देखी थीं और उसका स्वयं अनुभव किया था। इन प्रत्यक्ष अनुभवों को उनके दार्शनिक चिंतन का आधार मिला।⁷

कहने का तात्पर्य है कि उन्होंने अपने समय के भारतीय समाज और इतिहास के निरंतर होने वाले संघातों के बीच से ही अपनी काव्य—दृष्टि का निर्माण किया है, उसके लिए वे कहीं बाहर की ओर नहीं देखते हैं। उनकी वाणी की ओजस्विता, मर्मिकता और प्रतिभा का निरवार भारतीय जीवन की सच्चाई गहरे यथार्थ के रूप में प्रकट हुआ है। दूधनाथ सिंह लिखते हैं—“दरअसल निश्छल और पवित्र मानवीयता ही उनका जीवन दर्शन है उनकी कविताओं की राजनीतिक चेतना मनुष्य है। दुःख—दर्द और अवमानना में फंसा हुआ मनुष्य। अन्याय और असत्य के विरुद्ध वे बेखटके हर जगह आवाज बुलंद करते हैं। उनकी तीखी राष्ट्रीय चेतना और जन मुक्ति के भीतर यही मानवीय नैतिकता का भाव है।”⁸

निराला के सम्पूर्ण काव्य में उपेक्षित, दलित, पीड़ित, एवं निम्नवर्ग के उन्नति और जन साधारण की प्रतिष्ठा के प्रति गहरी आस्था के दर्शन होते हैं। उपेक्षित या जन साधारण उनके लिए कोई अमूर्त विचार नहीं है। उनकी कवि प्रतिभा ने भारतीय समाज में उस वर्ग को पहचानने और उसकी दुःख गाथा को अभिव्यक्त देने में कभी कोई भूल नहीं की। जन साधारण की यह गहरी और वास्तविक पहचान निराला के व्यक्तित्व की सांस्कारिक निष्ठा से उद्भूत हुई। जन सामान्य की उपेक्षा, उसके शोषण, उसके अपमान, उसकी निराशा, सहनशीलता

और घोर विपत्तियों में भी जीवन के प्रति उसकी भोली-भाली, दो टूक स्पष्टवादी निष्ठा तथा सहज विनम्रताभरा आत्मविश्वास भारतीय जनसाधारण के चरित्र की इस सच्चाई को निराला ने बड़ी गहराई से और सम्पूर्णतः पहचान है। जिनका प्रमाण उनकी कविता में मिलता है। निराला की निर्भीकता अदम्य साहस और उत्साह ने उन्हें पाखंडहीन तथा जीर्ण-शीर्ण परम्पराओं के समूल नाश के लिए प्रेरित करता है जिससे जीवन में मधुरता वापस आ सके। उन्होंने कभी भी तटस्थता को और न ही अनाचार कदाचार और अत्याचार को मौन रहकर सहा एवं पूरी मानव जाति को भी इसके खिलाफ लड़ने के लिए प्रेरित किया। इसका उदाहरण परिमल काव्य संग्रह की 'जागो फिर एक बार' शीषक कविता की पंक्तियों को देख सकते हैं— 'पशु नहीं वीर तुम, समर शूर, क्रूर नहीं काल चक्र में हो दबे आज तुम राजकुंवर! समर—सरताज ! . मुक्त हो सदा ही तुम बाधा—विहीन—बंध—छंद ज्यों, डूबे आनन्द में सच्चिदानन्द रूप।'”⁹

निराला का दृढ़ विश्वास था कि धार्मिक कट्टरता को दूर किए बिना राष्ट्रीय एकता दृढ़ नहीं हो सकती। यह कट्टरता बाहरी आचार से ज्यादा संबंध थी। विचारों से उसका संबंध कम था। कट्टरता मनुष्य की सोचने—विचार ने की शक्ति को नष्ट कर देती है, विचारों का महत्व पहचानने की शक्ति ही उसमें नहीं रहती। गहन दृष्टि से देखे तो निराला जी का मानवतावादी दर्शन परस्पर—विरोधी विचारधाराओं की आधारशीला पर खड़ी है। निराला जी पर वेदान्त का प्रभाव था और वे वैष्णव धर्म तथा ब्राह्मणवाद के कुछ हद तक प्रशंसक भी थे। किंतु अपने युग के नवजागरण को वे अलक्षित न कर सके और न वे करना चाहते थे। अतः एक ओर उनकी मानवतावादी रचनाओं में आदर्शात्मकता आदर्शमूलक सिद्धांत एवं विचार है तो दूसरी

घोर यथार्थता। ऐसा सच जिसे हम देखकर भी अनदेखा कर देते हैं। एक ओर रचनात्मकता है तो दूसरी ओर विध्वंस का अभिशाप। इसलिए मानव को उन्होंने सर्वश्रेष्ठ माना है तथा 'तुम हो महान, तुम सदा महान हो' कहकर उसका गौरगान किया है। मानवजाति के भावी सुख—सौभाग्य में कवि का विश्वास उनके अनेक गीतों में छाया हुआ है। वे मानव जाति को प्रेरित करते हुए लिखते हैं कि— “प्यास लगी है बुझाओं अमृत के धुंट पिलाओं छूते कनक—किरण फूटेगी कड़ी अंधरे की टूटेगी, डर से कठिन भीति छूटेगी मुदा कमल खिलाओ अमृत के छूट पिलाओं।”¹⁰ मानव में समानता स्थापित करने के लिए सारा जीर्ण-शीर्ण प्राचीन परम्पराओं को नष्ट—भ्रष्ट करने के लिए उन्होंने बादल का आवाहन किया था— झूम—झूम मृदु गरज—गरज घनघोर! राग अमर! अम्बर में भर निज रोर, झर—झर—झर निर्झर गिरि—सर में घर, मरु, तरु मर्मर सागर में सरित—तड़ित—गति—चकित पवन में।”¹¹

कवि निराला बादल को क्रांति का प्रतीक मानते हैं, वह विप्लव मचाने वाला है। कवि ने बादलों को गर्भ से पीड़ित—प्यासे जन की आकांक्षा को पूरा करने वाला तथा नई कल्पना एवं नए निर्माण के लिए क्रांति को संभव करने वाला बताया है। इस प्रकार बादल सम्पूर्ण मानव जाति के जीवन में नई आशा और उत्साह का संचार करता है। इसलिए बादल नवीन सृष्टि एवं नवजीवन का प्रतीक है। अतः बादल विप्लव संघर्ष मचाते हुए मानव जाति को परिवर्तन का संदेश देता है। निराला की एक बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने एक ही समय में अनुभूतियों के विभिन्न स्तरों को उठाया और उन्हें शीर्ष तक पहुंचा दिया। जिसमें मानवीय अनुभूति को सबसे ज्यादा उन्होंने महत्व दिया। प्रायः हम सभी निराला को महज एक कवि के रूप में विशेष

तौर पर जानते हैं जबकि उनका गद्य साहित्य कभी मत्वपूर्ण नहीं है। ‘चतुरी चमार’, ‘अलका’, ‘अपसरा’, ‘चोटी की पकड़’, ‘प्रभावती’, निरूपमा’, ‘वाले कारनामे’ और बिल्लेसुर बकरीहा’ आदि अस्मिरणीय गद्य साहित्य है। निराला के झींगुर बुद्ध, मंहगू लकुवा और चतुरी चमार आदि सभी अछूत होने के कारण समाज की आँखों का किरकिरी बना हुआ है और घोर दुःख कष्ट का जीवन व्यतीत करते हुए भी मानवीयता के धरातल को मजबूती से पकड़ा हुआ है जिसके चलते वे सदैव शोषित, पीड़ित और अपमानित हैं। भारतीय लोकहितवाद के आंदोलन की ओर अपने समसामयिक कवियों में निराला की दृष्टि सबसे पहले गई। छायावाद के अन्य कवि जब अपने यौवन के प्रेम—गीत में ही तल्लीन थे। निराला ने अपने आसपास के जगत् को खुली आँखों से देखा। यहाँ पर कबीर दास की बात मुझे याद आती है कि— “तू कहता कागद की लेखी मैं कहता आखन की देखी।” अर्थात् हिन्दी साहित्य के इतिहास में भक्तिकाल के ज्ञानमार्ग धारा के प्रतिनिधि कवि के रूप में महाकवि कबीर दास एक महान समाज सुधारक तथा विद्रोही कवि के रूप में जाने जाते हैं वैसी ही आधुनिक काल के छायावाद के अंतर्गत महाकवि निराला को हम एक समाज सुधारक विद्रोही कवि के रूप में जान सकते हैं। युवा लेखक एवं साहित्यकार डॉ. राजेन्द्र कुमार साव लिखते हैं— ‘निराला के सम्पूर्ण काव्य में उपेक्षित—दलित के उन्नयन और जनसाधारण की प्रतिष्ठा के प्रति गहरी आस्था के दर्शन होते हैं उपेक्षित या जनसाधारण उनके लिए कोई अमृत विचार नहीं है। जनसामान्य की उपेक्षा, उसके शोषण, उसके अपमान, उसकी निराशा, सहनशीलता और घोर विपत्तियों में जीवन के प्रति उसकी भोली—भाली वे लोग निष्ठा तथा सहज विनम्रता भरा आत्मविश्वास भारतीय जनसाधारण के चरित्र की इस सच्चाई को निराला ने बड़ी गहराई से और सम्पूर्णतः पहचाना है।’¹²

निराला द्वारा लिखी गई राष्ट्रीय चेतना और जनमुक्ति के भीतर निश्छल और पवित्र मानवीयता की राजनीतिक चेतना के केन्द्र में मनुष्य है। महाप्राण निराला ने दीन—दुखियों के अत्यंत करुण परंतु यथार्थ चित्र साहित्य में उन्होंने उतारे वे शायद मानव—मानव के भेद को स्पष्ट करने के लिए ही ‘भिक्षुक’, ‘तोड़ती पत्थर’, विधवा तथा दीन आदि कविताओं में दीन—दलित मानव की हीन अवस्था का जीवंत चित्रण हुआ है इसका उदाहरण निराला द्वारा रचित भिक्षुक कविता में हम देख सकते हैं— “वह आता, दो टूक कलेजे के करता, पछताता पथ पर आता चल रहा लकुटिया टेक मुट्ठीभर, दाने को भूख मिटाने को, मुंह फटी पुरानी झोली का फैलाता।”¹³

प्रस्तुत कविता के माध्यम से निराला ने यह बताने का प्रयास किया है कि किस प्रकार से गरीब लोग बेरोजागारी, भूखमरी के कारण भिक्षावृति को अपनाते हैं। भिक्षुक कविता में भिखमांगों की समस्या, असमर्थ—अपहिज भिखारी की दयनीय दशा का वर्णन बड़ा ही मार्मिक एवं हृदय विदारक हो उठा है। वही दूसरी तरफ निराला ने इलाहाबाद के पथ पर पत्थर तोड़ने वाला एक परिश्रमी युवती के वास्तविक जीवन चित्रों के संघर्षों को चित्रित किया है। प्रायः स्त्री को कोमलांगी कहा जाता है, स्त्रियों की सेवा के लिए पारिचारिकाएँ नियुक्त होती हैं, वैसी स्त्री से पत्थर तोड़ने जैसे कठोर से कठोर कार्य सम्पन्न करवाते देख निराला की आत्मा कराह उठती है। इलाहाबाद की सड़क पर भीषण गर्मी में सड़क पर पत्थर तोड़ने वाली भारतीय युवा नारी के प्रति कवि का हृदय मानव अधिकारों की ओर संकेत करता हुआ मानवतावाद की स्थापना के लिए प्रयत्नशील है। ‘तोड़ती पत्थर’ कविता की पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं जिसमें कवि ने श्रमिक नारी का करुण व दयनीय शब्द चित्र खीचते हुए आधुनिक मानव को सामाजिक विषमता

के लिए सोचने के लिए बाध्य किया है— ‘वह तोड़ती पत्थर’ देखा मैंने उसे इलाहाबाद के पथ पर वह तोड़ती पत्थर नहीं छायादार पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्थीकार श्याम तन, भर बंधा यौवन नत नयन—प्रिय कर्म रत मन गुरु हथौड़ा हाथ करती बार—बार प्रहार सामने तरु—मालिका, अट्टालिका, प्रकार।’¹⁴

समाज की कैसी दुःखद विडम्बना है कि हम स्त्री जैसी कोमल व ममता का प्रतीक कही जाने वाली नारी से इलाहाबाद की सड़कों पर चिलचिलाती घूप में हाथों में भारी हथौड़ा लेकर पत्थर तोड़ने जैसा कठोर कार्य करवाते हैं। यह दृश्य देखकर कवि का संवेदनशील हृदय वेदना से भर उठता है और वे उसके मानव अधिकारों के प्रति सजग होकर मानवीय करुणा के स्वर को जागष्ट करते हैं। डॉ. प्रेमनारायण अग्निहोत्री लिखते हैं कि— ‘समाज में विषमता को देखकर समाज की दयनीय स्थिति देखकर, परिस्थितियों से झकझोरे हुए लोगों की मार्मिक दशा को देखकर जो अनुभूति कवि निराला को हुई है उसे उन्होंने अपेन प्रगीतों में व्यक्त किया है। ‘दीन’, ‘भिक्षुक’, ‘विधवा’, ‘दान’ आदि प्रगीत इसी कोटि के हैं।’¹⁵

अतः हम कह सकते हैं कि निराला का समाज और निराला का ही समाज नहीं बल्कि आज का समाज भी गरीब समाज है। जहां पर शोषित, पीड़ित, गरीब, दलित तथा निम्न वर्ग के लोगों की समस्याएँ आज भी वैसी ही षास्वत बनी हुई हैं जैसे निराला के युग में थी। समय, सत्ता और चेहरे बदल गए हैं लेकिन मानवतावादी शोषण की प्रवृत्ति और परम्परा वही है। आज भी हमारे देश में निजी प्राईवेट क्षेत्रों में लोगों का एवं कर्मचारियों का जो शोषण हो रहा है उसे हम अनदेखा नहीं कर सकते हैं। अंतर यही है कि पराधीन भारत के समय अंग्रेज निम्न वर्ग गरीब, दलित, पिछड़े लोगों का शोषण करते थे और

स्वतंत्रता के बाद आज हमारे ही देश के नेता, अधिकारी व पूँजीपति वर्ग हमारा दिन—रात शोषण कर रहे हैं और हम विवश व लाचार होकर उसके इस शोषण को सहन कर रहे हैं क्योंकि आज भी हमारी आवाज को कोई सुनने वाला नहीं है। यह बिल्कुल सत्य है कि कवि निराला ने सदा समय के साथ लिखा। वे एक दूरदर्शी महान ऋषि की तरह अतीत—वर्तमान—भविष्य के परदों के आगे—पीछे बहुत दूर तक देखकर आने वाले युग की बात भी कही। युग की आत्मा और आवश्यकता दोनों को पहचानने में निराला ने कभी भी गलती नहीं की। आज यांत्रिकता के युग में दबती जाती मानवता की पुकार उनके काव्य द्वारा मुखर हो उठी है जिसके कारण वे विद्रोही व क्रांतिकारी कवि कहलाए। उनकी मानवतावादी प्रवृत्ति मूलतः तीन रूपों में देखी जा सकती है—

1. मानव—मानव की क्षमता
2. दलितों—पीड़ितों के प्रति करुणा और
3. अत्याचारी—पाखाण्डी के प्रति क्रोध, घृणा, व्यंग इत्यादि उनके काव्य द्वारा ही दलित मानव अपनी रौदी हुई आत्मा का गीत पूरे विश्व को सुना सका है ऐसे गीतों व कविताओं की रचना करने वाले निराला सच्चे अर्थ में मानवतावादी कवि थे। अंततः हम कह सकते हैं कि निराला छायावाद के प्रमुख स्तम्भ होते हुए भी समाज के विपरीत कभी नहीं हुए। वे अपनी प्रगतिशील चेतना के कारण सामाजिक जीवन में होने वाले अत्याचारों, अनाचारों, भ्रष्टाचारों और शोषकों की शोषकीय प्रवृत्ति के विरोध में खड़े रहते थे। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि निराला मानवता पर होने वाले सदियों से हो रहे अत्याचारों को सहन नहीं कर सके। इन्हीं अत्याचारों के खिलाफ आवाज उठाने के कारण उन्हें हम मानवतावादी

पैरोकार

धरातल पर खरा उत्तरते हुए देखते हैं। निराला का मानव प्रेम सबसे उच्च कोटि का था जिसमें करुणा, वेदना, संवेदना और मानवीय अनुभूति बहुत गहरी थी। ऐसे कवि को पाकर हमारा हिन्दी साहित्य जगत् सदैव उनका ऋणी रहेगा, जो मानवता के सच्चे पुजारी थे।

संदर्भ सूची :

1. मिश्र, भागीरथ, निराला काव्य का अध्ययन, राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली-6, प्रकाशन 1967, पृ. सं. 39
2. चतुर्वेदी, समस्वरूप, प्रसाद, निराला, अङ्गेय, लोकभारती प्रकाशन, 15 ए महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-1, चतुर्थ संस्करण : 2002, पृ. सं. 44
3. निराला, सूर्यकांत त्रिपाठी, 'कुकुरमुत्ता, युग—मंदिर, उन्नाव, प्रथम संस्करण : 1942, पृ. 39
4. निराला, सूर्यकांत त्रिपाठी, 'विधवा' (परिमिल), गंगा—पुस्तक माला, लखनऊ, प्रथम संस्करण 1930, पृ. सं. 118
5. मिश्र, भागीरथ, 'निराला काव्य का अध्ययन' राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली-6, संस्करण-1967, पृ. सं. 73
6. प्रो. शंभुनाथ, 'संस्कृति की उत्तर कथा, वाणी प्रकाशन, 21 ए दरियागंज, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 1985, पृ. सं. 22
7. मिश्र, भागीरथ, 'निराला काव्य का अध्ययन', राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली-6, संस्करण- 1967, पृ. सं. 74
8. सिंह, दूधनाथ, 'निराला आत्महन्ता आरथा', लोकभारती प्रकाशन, महात्मा गाँधी, इलाहाबाद-1, प्रथम संस्करण 1972, आठवां संस्करण-2014, पृ. सं. 172
9. शर्मा, डॉ. रामविलास (सं.) जागो फिर एक बार-2, 'राग विराग', लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद-1, संस्करण-2000, पृ. सं. 59
10. नवल, नंदकिशोर (सं.) निराला रचनावली, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1983, तृतीय संस्करण: 1992, पृ. सं. 363
11. शर्मा, रामविलास (सं.) बादल राग : 1, 'राम—विराग', लोकभारती प्रकाशन, 15-ए, महात्मा मार्ग, इलाहाबाद-1, संस्करण-2000, पृ. सं. 53
12. साव, डॉ. राजेन्द्र कुमार, निराला : व्यक्ति और काव्य मानवीय संवेदना, पैरोकार पब्लिकेशन्स आगरपाड़ा, कोलकाता-109, पृ. सं. 87
13. निराला, सूर्यकांत त्रिपाठी, 'भिक्षुक' (परिमिल) गंगा—पुस्तक माला, लखनऊ, प्रथम संस्करण 1930, पृ. सं. 133
14. निराला, सूर्यकांत त्रिपाठी, 'तोड़ती पत्थर (अनामिका—प्राचीन), नवजादिक लाल श्रीवास्तव कलकत्ता, प्रथम संस्करण : 1923, पृ. सं. 76
15. अग्निहोत्री, डॉ. प्रेमनारायण, निराला के काव्य का कलापक्षीय परिशीलन, उमेश प्रकाशन, इलाहाबाद-1, प्रथम संस्करण : 2014, पृ. सं. 218

हिन्दी आलोचना : स्त्री, स्त्रीवाद और भूमंडलीकरण

"विश्व पुष्टं ग्रामे अस्मिन् अनातुरमद"⁹

एक ओर जहाँ भूमंडलीकरण के समान ही विश्वग्राम की संकल्पना हमारे शास्त्रीय ग्रन्थ ऋग्वेद में इंगित है। वहीं दूसरी ओर पश्चिमी जगत के विद्वान् हेनरी किसिंजर मानते हैं भूमंडलीकरण की प्रक्रिया अमरीकीकरण की संज्ञा के तौर पर भी देखी जा सकती है। वहाँ तीसरी ओर "हम अमेरिकी गतिशील विश्व के समर्थक हैं, खुले बाजार के पैरोकार हैं और उच्च तकनीक के पुजारी हैं। हम अपने मूल्यों और पिज्जाहट दोनों का विस्तार चाहते हैं। हम चाहते हैं कि विश्व हमारे नेतृत्व में रहे और लोकतांत्रिक और पूँजीवादी बने। प्रत्येक पात्र में वेबसाईट हो, प्रत्येक के होठों पर पेप्सी हो, प्रत्येक कम्प्यूटर में माइक्रोसोफ्ट विन्डोज हो।"¹²

जहाँ तक साहित्य का सवाल है भूमंडलीकरण आने के साथ साथ इस बात को भी देखा जाना चाहिए कि वास्तव में हिंदी साहित्य में भी ठीक उसी समय यानी कि 1990 के दशक में क्या उसके समूचे तत्त्व आलोचना या रचना में दिखाई देने लगते हैं। अगर नहीं तो वह कौन से क्षेत्र थे जहाँ भूमंडलीकरण का सबसे ज्यादा प्रभाव दिखाई दिया। ऐसे में हमें गांधी के समय में होने वाले वैशिवक बदलावों को देखना जरुरी हो जाता है "मुझे आशा है कि मैं महान कवि की ही तरह खुली हवा का बड़ा समर्थक हूँ। मैं नहीं चाहता कि मेरा घर चारों ओर दीवारों से घिरा हो और खिड़कियां बंद रहें। मैं चाहता हूँ कि धरती की हर संस्कृति की हवाएं मेरे घर में यथासंभव खुलकर बहें। लेकिन मैं यह भी नहीं चाहता कि हवा के किसी झाँके से मेरे पैर ही उखड़ जाएं।"³

नीलू गुप्ता (शोध छात्र)

कलकत्ता विश्वविद्यालय

जहाँ भूमंडलीकरण ने पूरी दुनिया को एक तरफ वैशिवक गाँव बनने का अवसर दिया, वहीं दूसरी तरफ देशों की सरहदें, (मुल्कों की सियासी सरहदें) बिना तोड़े हुए दुनिया के तमाम देश किन चीजों पर एक मत या एक संग आने को राजी हुए। जब भी यह बात आती है तब जाहिर है कि कुछ राजीनामों पर कुछ शर्तें रही होंगी, जिनको ले करके समझौते हुए होंगे और समझौतों के बीच तमाम देशों ने यानी विकसित और विकासशील दोनों ही देशों ने अपनी इकोनॉमी यानी अर्थतंत्र को ले करके साझेदारी की होगी, ए.एल. बाशम कहते हैं "प्रवासी एवं व्यापारी भारत में आते रहे और भारतीयों ने भी व्यापार तथा संस्कृति का विस्तार अपनी सीमाओं के बाहर किया।"⁴

यानी कि सूचनाओं के स्तर पर सेवाओं के स्तर पर, लोगों की रूचियों और आरुचियों के स्तर पर और आद्योगिक घरानों के उपभोग के सामान बनाने की विधि, प्रविधि तकनीक के स्तर पर मुल्कों की जो सीमाएँ थीं उन्हें बॉउंड्री बियॉन्ड बाउंड्री लेस कर दिया गया या कि सीमाहीनता का होना सीमाओं के बने रहते हुए भी सुमिक्षित था। इसे सुमिक्षित बनाया भूमंडलीकरण ने। "सामान्यतः वैश्वीकरण विश्व के विभिन्न देशों के बीच आर्थिक सम्बन्धों, सहयोग और विनिमय को व्यापकता तथा गहराई देने की प्रक्रिया को कह सकते हैं। व्यवहार में यह विश्व व्यापार को निर्बाध विस्तार देने की ही प्रक्रिया है लेकिन कोई भी सरल धरना व्यवहार में सरल नहीं रहती। दो देशों के आपसी रिश्तों के रास्ते में उन देशों की प्रभुसत्ता देशी कानून, परम्परायें,

भूसामरिक प्राथमिकताएं और सांस्कृतिक मान्यताएं अवरोधकों की तरह आती रहती हैं।⁵ जब किसी भी मुल्क में राजनीतिक बदलाव आता है तो वह अपने साथ साथ अपने समूचे तंत्र को बदलकर रख देता है। मसलन सामाजिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक और साहित्यिक, राजनैतिक सभी स्तरों पर ऐसा नहीं है कि ये जो भूमंडलीकरण का स्ट्रक्चर है, वह हिन्दुस्तान में या पूरी दुनिया में पहली बार दिखाई दिया हो। 20वीं शताब्दी से गुजरते हुए अगर हम पुरा सभ्यताओं की गहराई से पड़ताल करें तो पाएंगे कि चाहे वो बैबिलोनिया की सभ्यता हो, चाहे मेसोपोटामिया की सभ्यता हो, चाहे इंडो आर्यन की सभ्यता हो और चाहे वो सिंधु सभ्यता हो, चाहे मोहनजोदड़ो की सभ्यता रही हो— इन सभी सभ्यताओं में अपने—अपने अर्थतन्त्र को मजबूत करने के लिए तमाम बार उस समय की शासकीय व्यवस्था के भीतर या राजकीय व्यवस्था के भीतर सियासी तंत्र को मजबूत करने के लिए व्यापार और हथियार इन दोनों स्तरों पर समझौते संधियाँ और सीमाओं का उल्लंघन होता रहा और दूसरी सभ्यताओं पर हिस्सेदारी कब्जेदारी या घुसपैठ या फिर किन्हीं दो सभ्यताओं के बीच में आर-पार के दरमियान समुद्री या दरियाई सीमाओं को पार करके एक कॉमन मिनिमम एजेंडा के साथ कुछ शर्तों के साथ इसलिए समझौते होते रहे कि दोनों सभ्यताओं का जो आर्थिक ढाँचा है, वो लगातार अधिक संगठित, अधिक ताकतवर, और समन्वय सहयोग के कारण एक बड़े बाजार का रूप लेकर व्यवस्थाओं को तंत्र को मजबूत कर सके। मगर ऐसे में नोबल विजेता जो सेफ स्ट्रिलिटज मानते हैं “भूमंडलीकरण के द्वारा अमेरिका ‘वाशिंगटन आम राय’ को लैटिन अमेरिकी और बाद में तीसरी दुनिया के देशों में निर्लज्जता से थोपने का प्रयास रहा है। यह ‘आम राय

वाशिंगटन’ की पन्द्रहवीं और उन्नीसवीं सड़क के बीच बनी थी, 15वीं सड़क पर अमेरिकी ट्रेजरी विभाग और 19वीं सड़क पर अंतराष्ट्रीय मुद्रा कोश जैसी संस्थाएं स्थित हैं।⁶

वैश्वीकरण को परिभाषित करने के लिए खासतौर से उसे दो तरीके से पुकारा गया एक भूमंडलीकरण एक वैश्वीकरण। तीसरी तरफ uncommon नेम अंतराष्ट्रीय कारण के रूप में जाना गया। टॉम.जे. पामेर मानते हैं, सीमाओं के पार विनिमय का राज्य प्रतिबंधों का द्वास या विलोपन और इसके परिणामस्वरूप उत्पन्न हुआ उत्पादन और विनिमय का तीव्र एकीकृत और जटिल विश्वस्तरीय तंत्र ऐसा माना जाता रहा है कि दुनिया भर में समय समय पर बहुआयामी और बहुदेशीय अर्थशास्त्री हुए, इन्होंने मनुष्य की समझदारी के लिए एक खास तरह से वैश्वीकरण को परिभाषित किया और खासतौर से गर देखें तो इसे इस रूप में भी देखा जाता है कि पूरी दुनिया में जो श्रम करने वाले मजदूर हैं उनकी मेहनत का पैसा दुनिया के तमाम मुल्कों में एक समान आधार पर मिल सके यह कोशिश की हुई। मगर यह सिर्फ सैद्धांतिक अवधारणा ही फिलहाल तक बनी हुई है। सबसे महत्वपूर्ण और जरूरी बात भूमंडलीकरण को लेकर के नोमचोम्स्की ने सरल शब्दों में कही और नोमचोम्स्की को पूरी दुनिया में ऐसे चंद विद्वानों और विशिष्ट विद्वानों के बतौर जाना जाता है जिन्होंने दुनिया भर में हो रहे बदलावों को लेकर और उत्पीड़न की व्यवस्था को लेकर या अत्याचारों के दबावों को लेकर बहुत सहज सरल तरीके से वर्ल्ड इकोनॉमी यानी दुनिया के देशों में फैली हुई आर्थिक व्यवस्था, अर्थतंत्र या व्यावसायिक सीमाकरण को लेकर के यह कहा कि दरअसल neoliberalist जिसे हम अपने भीतर सामाजिक सांस्कृतिक आर्थिक संरचना में बगैर किसी व्यवधान के धारण कर सके। ऐसी व्यवस्था को

ग्लोबल इकोनॉमी या इकोनॉमिक ग्लोबलाइजेशन माना जाता है। अगर बात करें हरमन हेडली की जो यह मानते हैं कि वैश्वीकरण के समानांतर अंतर्राष्ट्रीयकरण जैसे शब्द का इस्तेमाल जब भी किया जाता है तो उनमें एक जरा सा अंतर समझने के तरीके में और कहने के लहजे में यानी अर्थ के व्यापार में आ जाता है जबकि वैश्वीकरण हर एक मुल्क की अपनी पहचान के साथ सांस्कृतिक और राजनीतिक अस्मिता के साथ अन्य मुल्कों की सांस्कृतिक राजनीतिक व्यवस्था के भीतर दाखिल होता है। इस लिहाज से अगर हम देखें तो बहुत साफ हो जाता है कि जिसे हम भूमंडलीकरण के आलोक में सीमा से बाहर निकल कर दूसरी सीमा में जाना मानते हैं और दो सीमाओं के बीच व्यापारिक तंत्र को लेकर किसी भी तरह का व्यवधान न हो, वहाँ दूसरी तरफ इस आदान प्रदान के कारण सांस्कृतिक बदलावों का सामना करना, सांस्कृतिक पहचान के संकट का मुकाबला करना और नई सांस्कृतिक संरचना के आने का स्वागत करना वैश्वीकरण की सबसे बड़ी देन है यानी कि भूमंडलीकरण आने के साथ—साथ विकसित देश और विकासशील देशों के बीच जो दूरी थी, वह पूरी तरह से केवल व्यापार को ध्यान में रखकर उत्पादन और विनियम को ध्यान में रखकर अपनी—अपनी सीमाओं में रहते हुए औद्योगिक घरानों के लिए एक—दूसरे मुल्कों के भीतर स्वेच्छा और स्वतंत्रता के साथ आचरण का व्यवसायीकरण था।

यह अंतर्राष्ट्रीय व्यवसायों का वैश्विक आचरण था और जब ऐसा हुआ कि भूमंडलीकरण ने 1990 के दशक में अपने पाँच पूरी दुनिया में पसारे तब भारत जैसे देश में छोटी छोटी अस्मिताओं का उभार शुरू हुआ। वह छोटी अस्मिताएँ जिन्हें अब तक उपेक्षित रखा गया अब वह मुख्यधारा में आने के लिए जोर आजमाइश

करने लगी और अपने अस्तित्व की पहचान के संकट से उभरने के लिए वैश्विक तकनीक, वैश्विक आचरण और वैश्विक नीतियों के चलते बहुत तेज रफ्तार से आगे बढ़ना शुरू हुई। नतीजा यह हुआ कि भारत जैसे देश में जिन्हें तीसरे दर्जे का देश माना जाता है। यहाँ साहित्य, इतिहास और अस्मिता विमर्श इन स्तरों पर सांस्कृतिक टकराहटें और दबी हुई अस्मिताओं के उत्सर्जन या उभार का दौर आरम्भ हुआ। इसके लिये उसे पूरी दुनिया के तमाम देशों से अस्मितावादी विमर्श और पहचान के मूलभूत आधर स्तम्भ व्यावहारिक और सैद्धांतिक दोनों धरातलों पर उपकरण और उपचार हासिल होने लगे। यहाँ से भूमंडलीकरण के दौर में नारीवाद की नई संरचना का उदय होता है और स्पष्ट रूप से नारीवादी अस्मिता का संघर्ष और पहचान के संकट से उभरने के लिए विमर्श और आंदोलनों के दौर शुरू हुआ और इसी दौर में भारत में जो सबसे पहली किताब नारीवादी अस्मिता की पहचान और नारीवादी अस्मिता की परिपाठी के रूप में सामने आई, वह पुस्तक थी सिमोन द बोउआर की पुस्तक 'द सेकेंड सेक्स' जिसका हिंदी में अनुवाद किया प्रभा खेतान ने 'स्त्री उपेक्षिता' नाम से जाहिर है कि किसी भी वाद विमर्श और अस्मिता के आने के लिए किसी बनी बनाई मजबूत बुनियाद की जरूरत होती है, जो यह तय कर देती है कि आगे आनेवाले समय में इन अस्मिताओं का अपना प्रभवशाली स्वरूप चुनौतियाँ और भविष्य कैसा होगा और यहाँ से हिन्दी साहित्य में नई नई अस्मिताओं के आने की सारी संभावनाएं दिखाई देने लगती है। यानी एक आलोचनात्मक दृष्टि नजरिया या विजन साहित्य की सबसे मजबूत संरचना में दाखिल होने के लिए नए—नए सवाल आने लगते हैं और नई—नई मुश्किलें दूसरी तरफ पैदा होना आरम्भ होती हैं। ताकि पूर्व प्रचलित मान्यतायें

खंडित हो सकें और नए मूल्यों का आना मुमकिन हो सके। यहीं वजह है कि इन मूल्यों, नैतिकताओं, आदर्शों और विमर्श के नए उपदेशात्मक और व्यवहारिक पक्षों को समाज में दबी—कुचली अस्मिताओं ने बड़े ही सहज तरीके से स्वीकार किया और ऐसी ही अस्मिता थी पूरी दुनिया में—स्त्री अस्मिता जिसने अपने उभार के लिए स्त्रीवादी संरचना का निर्माण किया। भारत में स्त्रीवादी लेखिकाओं को अगर देखना है तो उनमें से आधुनिक समय की लेखिकाओं और रचनाओं को देखना, परखना, जाँचना और स्त्रीवादी कसौटी पर कसना जरूरी है जिनमें मुख्यतौर पर अनामिका, मैत्रेयी पुष्पा, कात्यायनी, उशा प्रियंवदा ऐसे तमाम नाम हैं जो स्त्रीवादी संरचना के आधार स्तम्भ माने जा सकते हैं।

नारीवाद का यह कर्तई भी मतलब नहीं है कि वह पुरुषों के खिलाफ हो। बहुत से विद्वान मानते हैं। अलग बात यह है कि पुरुषों के बर्ताव, आचरण, व्यवहार, चालचलन, रंगढंग और बोली वाणी जो भी स्त्रियों के सम्बंध में उनकी सोच में मौजूद है जो कहीं से भी प्रोग्रेसिव या तरक्की पसंद नहीं है और आधुनिक तो कर्तई नहीं, न ही वैशिकता से लेना देना है। हर संस्कृति हर देश के अपने अपने वर्चस्वशाली पुरुषवादी भेदभाव हैं जो खासकर स्त्रियों को लेकर है, मसलन कहीं रंगभेद, कहीं लिंगभेद, कहीं जातिभेद, कहीं नस्लभेद आदि।

भूमंडलीकरण के दौर में अकादमिक सांस्थानिक नारीवाद का स्वरूप तमाम तरीकों और स्वरूपों में फैला और दूसरी तरफ जमीनी हकीकत यह रही कि नारीवादी मुद्दे, आंदोलन, संघर्ष—विमर्श और लेखन, तीसरी तरफ अगर अकादमिक और सांस्थानिक जगहों पर नारीवादी अध्ययन के केंद्र न खुलते तो क्या नारीवाद को संरक्षण दिया जाना मुमकिन होता। वहीं चौथी

तरफ अकादमिक लेखन से अलग स्वतंत्र लेखन में नारी—स्वातंत्र्य का ढाँचा आचरण और व्यवहार पक्ष, प्रतिपक्ष, विपक्ष, संवाद, वाद और विमर्श स्त्री चरित्रों और किरदारों को लेकर क्या वास्तव में बहुत स्पष्ट है जिसे हम नारीवाद के तौर पर जानते हैं। वहीं एक ओर क्या नारीवादी अस्मिता के आने के पहले फेमिनिस्ट मूवमेंट, वुमेन्स लिबरेशन, सिस्टर हुड, वुमेनिजम, वूमेन मूवमेंट आदि आदि सिम्बल्स का प्रयोग क्या पुरुषवादी अस्मिता के अंदर नहीं समाहित रहा है या फिर द वुमेन्स वर्ल्ड नाम का कोई एक दौर या युग आने का यह नया अध्याय है। क्या नारीवाद को सेक्सिएस्ट सेक्सिस्म, सुफरजिस्ट, ग्लास सीलिंग आदि आदि के तौर पर जानते हैं या नारी अस्मिता को देखने के और भी तरीके विकसित हुए हैं। दूसरी तरफ यह भी देखना होगा कि फेमिनिज्म के समानांतर स्यूडो फेमिनिज्म की अवधारणा ने कहीं भी नारीवाद के विरुद्ध कोई नया ढाँचा उसकी नकल के रूप में तैयार तो नहीं किया। जिसे मिशोगाईनिस्ट सेक्सिएस्ट वूमेन, हैटचिंग मेल सुपर मेशिस्ट सओनिस्ट पेट्रियार्कल या मेल सओनिस्ट के तौर पर जानते हैं। मैसकुलिस्ट, ब्यगोट, रेसिस्ट, मेनिस्ट मिस एंड थ्रो जिंगोईस्ट आदि आदि ने नारीवाद को कितनी क्षति पहुंचाई है।

भूमंडलीकरण के दौर में हिंदी आलोचना ने जो यात्रा वैशिक स्तर पर शुरू की सबसे पहले उसका लेखाजोखा जानने की जरूरत है। कहने का तात्पर्य यह है कि हिंदी के कौन कौन से लेखक हैं जिन्होंने पूरी दुनिया में हिन्दी भाषा के जरिए भूमण्डल में अपनी जगह बनाई। दूसरी बात यह है कि इस आलोचना के केंद्र में हिंदी भाषा ने क्या खुद को वर्चस्व की भाषा के रूप में बने रहने की कवायद की है या कोशिश की है। नारीवाद और भूमंडलीकरण को ठीक ठीक जानने के पहले इस बात को जानना

ज्यादा जरूरी है कि पूरी दुनिया के पैमाने पर हिंदी ने खुद को राष्ट्र भाषा, सम्पर्क भाषा, राजभाषा भूमण्डल की भाषा के साथ साथ क्या विश्व भाषा बनने के लिए कोई पहल की है। राजनीतिक हलकों की मानें तो हिंदी ने अपने आप को स्थापित करने के लिए सबसे पहले दुनिया के बड़े राजनीतिक मंचों पर भारत के पूर्व प्रधानमंत्री और विदेश मंत्री अटल बिहारी वाजपेयी और नरसिंहा राव ने हिंदी में भाषण देने की परंपरा का आरंभ किया। अगर आंकड़ों की बात करें तो तकरीबन तकरीबन 100 से अधिक विदेशी अकादमिक संस्थानों में हिंदी भाषा को अध्ययन अध्यापन के लिए पाठ्यक्रम में शामिल किया गया है।

इसके बरअक्स यह भी जानना जरूरी है कि हिंदी के वे कौन कौन से लेखक हैं जिन्होंने पूरी दुनिया में रचे गए श्रेष्ठ साहित्य के बरक्स हिंदी की कृतियों को पूरी दुनिया के तमाम देशों में केवल इसलिए नहीं रचा कि वह हिंदी को स्थापित करना चाहते थे बल्कि भूमंडलीकरण के बाद जो बदलाव पूरी दुनिया में आये, उन बदलावों को हिंदी प्रान्त के लोग किस नजरिए से उसका रचनात्मक आंकलन मूल्यांकन, विश्लेषण, सृजन कर रहे थे और जिस वजह से पूरी दुनिया में हुए हिंदी सम्मेलनों में हिंदी के लेखकों ने शानदार भूमिका अदा की। चाहे वह मूल एशिया के सरहदों के संग संग जुड़े रहे हो या फिर वह देश यूरोप के भीतर की सीमा से जुड़े रहे हों, इसी मसले को देखें तो हिंदी में सबसे पहले जिन जगहों में अपनी पैठ बनाई उनमें मॉरिसस और सूरीनाम जैसे देशों का नाम सबसे पहले लिया जा सकता है। ये वह जमीनें हैं जो जिन्होंने वैश्विक बदलावों को हिंदी के जरिए जांचने परखने लिखने और बोलने के कामों में इस्तेमाल किया है। मसलन समारोहों कार्यशालायें गोष्ठियों आदि। इसी हवाले

से रचनाकार कमल किशोर गोयनका को हिंदी के वैश्विक लेखक के तौर पर तीन दशकों से अधिक वक्त से जाना जाता रहा है। इसके अलावा हिंदी में लिखने वाले जिन्हें आप प्रवासी लेखक कह सकते हैं उनमें अनत अभिमन्यु, श्रीमती डॉ संयुक्ता देवी, डॉ वीरसेन जोगा सिंह, अजमिल माता बदल, सत्यदेव टेंगर, प्रह्लाद रामशरण, ये वो नाम हैं, जिन्होंने सबसे पहले हिंदी को पूरी दुनिया के तमाम देशों तके ले जाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। चूँकि नारीवाद को समझने के पहले यह जानना जरूरी है कि हिंदी आलोचना रचना के बहाने किन किन सरहदों के पार पहुंची है और वैश्विक स्तर पर हिंदी रचना अपने आलोचनात्मक नजरिये से दुनिया के तमाम देशों में केवल नारीवाद ही नहीं वैश्विकतावादी सामर्थता—असमर्थताओं को कितनी मजबूती के साथ अपने लेखन में चाहे वह ‘हिंदी परिषद’ रही हो चाहे वह ‘आर्य सभा’, ‘हिंदी प्रचारिणी सभा’, ‘आर्य रविवेद प्रचारिणी सभा’, ‘हिंदी लेखक संघ’, ‘हिंदी शिक्षक संघ’, ‘हिंदी संगठन’ जैसे दल समूह बने हो या फिर इनके जरिए हिंदी में आने वाली सामग्री जिन पत्रिकाओं के बहाने से दुनियाभर में पहुंचती रही है जहाँ केवल नारीवाद का खाका नहीं खींचा गया। बकायदा हर मसले पर विस्तार से बात की गई है। ऐसी अंतरराष्ट्रीय पत्रिकाओं में “आर्य पत्रिका, मॉरीशस मित्र, आर्यवीर बसन्त, जागृति, आर्योदय, मजदूर समाजवाद, अनुवाद दर्पण, इन्द्र धनुष, मुक्ता”⁸

इसके अलावा हिंदी में नारीवादी आलोचना का विस्तार तमाम दृष्टियों से भारतवंशी सूरीनाम से होते हुए नेपाल, जापान, चीन, फिजी, रूस जर्मनी, इंग्लैंड, इटली, नॉर्वे, अमेरिका, न्यूयॉर्क आदि देशों तक स्त्री लेखन, स्त्रीवाद, स्त्री विमर्श या स्त्री सरोकारों से जुड़े मुद्दों आदि आदि के रूप में साहित्य, आलोचना और स्त्री—लेखन को

समेटे हुए हिंदी भाषा में ग्लोबल गाँव में अपनी अटल पहचान बनाई है। मसलन अगर हम नारीवाद को फिलहाल केंद्र में न रखकर भूमंडलीकरण के दौर में हिन्दी आलोचना का रचनात्मकता प्रभाव देखें तो वह 1980 के दौर में अमेरिका में 'विश्व' नामक त्रैमासिक पत्रिका के रूप में दिखाई देता है। इसी तरह से 'सौरभ' पत्रिका जिसे डॉ कुँवरचन्द्र प्रकाश ने यूँ तो हिंदी को दुनियाभर में फैलने फैलाने के लिए शुरू किया था और इसी नजरिये से अगर देखें तो 'विश्व विवेक' नामक पत्रिका जिसे डॉ. भूदेव शर्मा ने आरम्भ किया, जिसमें हिंदी की तमाम विधाओं को लेकर लगातार रचनात्मक आलोचनात्मक लेखन होता रहा है। भूमंडलीकरण के आने के बाद से नारीवादी विषय को जो सबसे बड़ा सहयोग मिला वह था बाजारवादी बहुसांस्कृतिकता का हस्तक्षेप जहाँ पर विज्ञान, तकनीक, विमर्श और साथ ही साथ अंतरराष्ट्रीय कम्पनियों का तीसरी दुनिया के देशों में दखल—ये सारी चीजें बाजारवाद का अहम हिस्सा बनी, यहीं से देखा जाय तो भूमंडलीकरण का असर ये हुआ कि नारीवाद ने अपने तमाम प्रारूपों को पूरी दुनिया में अपनी पूरी ताकत के साथ सामने लाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। जहाँ दुनियाभर में चल रही संस्थायें जो कि हिंदी के लिए काम कर रही थी, जिन्हें प्रवासी हिंदी लेखक लेखिकाएं केवल किसी एक विमर्श को केंद्र में न रख करके दुनियाभर में चल रहे तमाम विमर्शों और बदलावों को अपने लेखन का हिस्सा बना रहे थे। वहीं 'भारतीय विद्या भवन', 'न्यूयॉर्क बालभारती सैन फ्रांसिस्को', 'विश्व वैदिक अध्ययन परिषद', 'हिन्दू विश्वविद्यालय', 'भारतीय साहित्य संगम', 'अंतरराष्ट्रीय हिंदी फाउंडेशन', 'विश्व हिंदी समिति' जैसी तमाम संस्थायें जो कि अमेरिका जैसे विकसित देश में पूरी मजबूती के साथ प्रवासी रचनाकारों के दखल के कारण और पहल के कारण काम कर रही थी। इन्हीं में कुछ विद्वान महिला रचनाकारों पर अगर नजर डालें तो

श्रीमति सावित्री गौड़, डॉ अंजना संधिर, डॉ. सुष्म बेदी के आलावा और भी ऐसे नाम हैं जो महिलाएँ भारत से सात समंदर पार तमाम मुल्कों में पहुंची और उन्होंने यह पाया कि उनके अपने जीवन के निजी पहलू पारिवारिक उलझनों, दबाव और सामाजिक सांस्कृतिक बदलाव इन सभी ने उन्हें स्त्री लेखन के लिए जहाँ एक और नए विषय उपलब्ध करवाए जिसमें एक रचना के भीतर कई देशों की संरचना दिखाई दे रही थी। वहीं दूसरी तरफ इन्हीं महिलाओं में कुछ ऐसी महिलाएँ भी रही हैं जिन्होंने यह नहीं माना कि वे स्त्रीवादी लेखन कर रही हैं किंतु वे स्त्री होने के अर्थ को साफतौर पर व्याख्यायित कर रही थी। विस्तार दे रही थी और स्त्री के भीतर चल रही उलझनों उहापोहों और प्रवास के दौरान स्त्री के कोमल मन पर दबावों को अपने लेखन का हिस्सा बना रही। इसके पहले कि हम स्त्रीवादी लेखन और विमर्श की प्रवासी महिला लेखिकाओं की रचना और आलोचना के बहाने स्त्री और स्त्रीवाद और स्त्री विमर्श और स्त्री संघर्ष के तमाम प्रत्ययों को परावर्तित होते देखें उससे पहले इस बात की तरफ गौर करना जरूरी है मिसाल के तौर पर हिंदी का यह रुतबा रहा है अमेरिका जैसे ताकतवर देश में कि उसने इस देश के भीतर तकरीबन 40 से ज्यादा विश्वविद्यालयों में अपने रचनाकर्म अलोचनाकर्म और विमर्शात्मक विषयों को अध्ययन और अध्यापन का हिस्सा बनाया, जैसे कोलंबिया, वाशिंगटन, टेक्सास, कैलिफोर्निया आदि विश्वविद्यालयों में भले ही स्त्री अध्ययन केंद्र न खुले हो लेकिन हिंदी का अध्ययन केंद्र बड़ी मात्रा में खुले। जिसका परिणाम यह हुआ कि हिंदी के इतिहास साहित्य और आधुनिकता के भीतर आये हुए तमाम विमर्शों को अनेक विद्वानों ने अपने अपने नजरिए से नए नए संस्करणों में देखने का काम किया। जैसे एक तरफ लोककथाओं को लेकर जो कि भारतीय लोककथाएँ रही हैं उनका अनुवाद अंग्रेजी में

हुआ, वहीं दूसरी तरफ पंचतंत्र और हितोपदेश जैसी लोकप्रचलित दंत कथाओं का प्रचार प्रसार अनेक अनेक अर्थों में अनेक अनेक संभावनाओं से भरा हुआ होता रहा। और यह अनुवाद ज्यादातर 'जॉर्नल ऑफ साउथ एशियन लिटरेचर' नाम की पत्रिका में छपता रहा। इनमें जहाँ एक ओर आधुनिक साहित्य के हिंदी के सबसे बड़े प्रतिष्ठित जनप्रिय लेखक प्रेमचंद, रेणु, निराला आदि लेखकों के संग्रह प्रकाशित हुए। वहीं दूसरी तरफ गौर करने वाली बात है कि उस दौर की सबसे जानीमानी लेखिका महादेवी वर्मा को भी अनुवाद के जरिए वही सम्मान और प्रतिष्ठा मिली। जाहिर है कि भले ही रामचरितमानस या रामायण जैसी कृतियाँ जो दुनिया की तमाम भाषाओं में अनूदित हुई, जैसे कि 1926 में रामचरितमानस का अनुवाद रूसी भाषा में जब हुआ, तब यह कर्तई मुस्किन नहीं था कि उसमें स्त्रीवादी तथ्य, तर्क प्रछेपित किये जा सके। किंतु भारतवर्ष की सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि जिस स्त्री विमर्श की चर्चा आधुनिक भारत के 20वीं शताब्दी के उत्तरार्दध में आरम्भ हुई वह बिना किसी 'इज्म' या 'वाद' के महाकाव्यों में मौजूद तमाम मिथकीय चरित्र के तौर पर उभरी विदुशी स्त्रियाँ और उनके द्वारा दिये गए आदर्शवादी और शिक्षाप्रद कलात्मक ज्ञान से जो चीजें निकल कर आती हैं, वह आज भी नारीवाद की जो मुख्य लड़ाइयां या मुद्दे हैं, उनसे भी आगे बढ़कर बौद्धिक स्तर पर विमर्श को विस्तार और नए आयाम देती है।

यह भी बड़ा अद्भुत है कि जहाँ तक सवाल है हिंदी का वैश्विक भारत में समायोजन का तो 1990 के पहले भी यानी भूमंडलीकरण के आने के तकरीबन 50 साल पहले देश में हिंदी भाषा में पढ़ाई लिखाई की व्यवस्था की जा चुकी थी। चूंकि नारीवाद का संबंध प्रचार प्रसार की दृष्टि से और विमर्श के नजरिए से पत्र पत्रिकाओं से जुड़ा हुआ है। ऐसे में भारत का पड़ोसी देश नेपाल इन मायनों में हिंदी के लिए

और हिंदी क्षेत्र में चले आ रहे विमर्शों के लिए बड़ी भूमिका निभाता आ रहा है कि वहाँ से भी 'साहित्य लोक', 'प्राची प्रकाश', 'ब्रह्म भूमि' जैसी तमाम पत्रिकायें हिंदी को अपने शानों पर रखे हुए हैं। एक सबसे बड़ा सवाल यह भी है कि वैश्वीकरण आने के साथ साथ वह कौन सा मुल्क का दरवाजा था जो हिन्दी के लिए सबसे पहले खुला जहाँ से हिंदी ने अंतर्राष्ट्रीय यात्रा का द्वार खोला तो यकीनन वह मुल्क मॉरीशस था। जाहिर तौर पर मॉरीशस ने पहली दफा राष्ट्रीय संघ में हिंदी के लिए पहली बार प्रस्ताव पारित किया था। पूरी दुनिया के देशों में अगर हम केवल अमेरिका के भीतर हिंदी आलोचना और उसमें स्त्री लेखन करने वाले प्रवासी महिला रचनाकारों पर बात करें तो ऐसे में भले ही स्त्रीवाद का प्रारूप सैद्धांतिक स्तर पर ठीक वैसा ही सामने न आया हो जिसमें स्त्री अस्मिता को और स्त्री विमर्श को केंद्र में रखा गया हो मगर इतना जरूर रहा है कि वहाँ स्त्री की उपस्थिति और स्त्री के होने की संभावनाओं के कारण नीति, इतिहास, सभ्यता, मिथक जो कि भारत के मूल अंग रहे। इनको पहचानने की आलोचनात्मक दृष्टि जरूर मिलती है और बड़ी दिलचस्प बात है कि प्रवास में रह रहे रचनाकारों में पुरुष लेखकों से ज्यादा तादात महिला लेखकों की है। इससे भी ज्यादा दिलचस्प बात यह है कि जहाँ एक ओर भारत में महिला लेखन अभी पहले पड़ाव पर है खासतौर से स्त्रीवादी लेखन को लेकर के, वहीं प्रवासी महिला लेखिकाओं ने महिला लेखन को भूमण्डल के केंद्र में लाकर ताकतवर तरीकों से खड़ा कर रखा है। अब यहाँ से दो दृष्टियाँ विकसित होती हैं। एक महिला लेखिकाओं द्वारा स्त्रीवादी विमर्श दूसरा महिला लेखिकाओं द्वारा महिला लेखन जिसमें दुनिया के तमाम विषय ठीक उसी तरह से अंतर्निहित है जैसे कि अन्य रचनाकारों के लेखन कर्म में सारे तत्व मौजूद हैं। स्त्रीवादी लेखन पर बात करने से पहले ज्यादा जरूरी यह है कि जब बात भूमण्डल की हो रही हो तो ऐसे में

पैरोक्तर

सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण है कि भूमंडलीकरण के दौर में सबसे पहले उन लेखिकाओं के बारे में बात करना जरूरी है जो प्रवास में रह करके आवास, निवास और प्रवास यानी स्त्रीवाद के तीन स्तरों पर बात करती हैं, जैसा कि बार बार प्रश्न उठाया जाता रहा है कि स्त्री का घर कहाँ है? और यह सवाल अमूमन स्त्रीवाद के घेरे में आता है। चूँकि इस सवाल को उठाने वाले रचनाकारों ने महिला लेखिकाओं की बड़ी हिस्सेदारी है और यहीं से स्त्रीवाद की शुरुआत होती है कि उसका अस्तित्व उसकी अस्मिता उसका वर्चस्व उसकी पहचान कहाँ है। इन चीजों की पड़ताल करने के लिए जरूरी है कि प्रवास में रह रही महिला रचनाकारों की कुछ प्रमुख रचनाओं को लेकर के भले ही विस्तार से बात न की जा सके तो भी संक्षिप्त या सार रूप में इस बात को दर्ज किया जाना बेहद जरूरी है कि स्त्री लेखन के किस्से, कहानियों में औपन्यासिक आत्म कथा वृतांतों में स्त्री कहाँ है।

स्त्रीवाद का एक सिरा यह है कि स्त्री कहाँ रहती है? अपने भीतर जितना रहती है उतना ही अपने बाहर की दुनिया में रहती है और बाहर की दुनिया में रहने वाली स्त्री, जीने वाली स्त्री, बाहर की दुनिया को देखने, भोगने और संघर्ष करने वाली स्त्री भी क्या अपने भीतर भी उतना ही गहरे देखती, भोगती और संघर्ष करती है? राजनैतिक अधिकारों से बाहर और सामाजिक सांस्कृतिक विचलनों से परे स्त्रियों ने उन संभावनाओं की तलाश कब कहाँ कैसे की जिनमें एक स्त्री जिंदा बनी रह सकती है, जिंदा बची रह सकती है। मसलन भारत से बाहर गयी महिलाएँ जिनमें सात समंदर पार गैर-मुल्कों में बसी स्त्रियों के बतौर जानते हैं और वह भी इसलिए कि हजारों लाखों महिलाओं के प्रवास के बावजूद चंद महिलाएँ ऐसी हैं जिन्होंने अपने होने को पूरी दुनिया के सामने जिन रूपों में रखा है, उनमें सबसे महत्वपूर्ण है स्त्रीवादी लेखन। उनमें कुछ थोड़ी अधिक महत्वपूर्ण है जिनपर

बात किये बगैर स्त्रीवादी लेखन या स्त्री के कम्फर्ट-जोन की पहचान को स्त्री होने की पहचान को या फिर स्त्री के प्रवास को या फिर स्त्री के बाहर या भीतर या फिर स्त्री के भीतर और बाहर स्त्री की पहचान को किस तरह समझा जाए इसे देखने के लिए उनके द्वारा लिखी गई रचनाओं पर बात किये बगैर मुमकिन नहीं है कि स्त्रीवादी पैरामीटर को भारतीय संदर्भ में समझा जा सके। स्त्रीवाद के भीतर जैसा कि आवास प्रवास और निवास का मसला ठीक वैसा ही उठा है जैसा कि सांस्कृतिक पहचान का मसला। इस तरह से हिंदी आलोचना, स्त्री, स्त्रीवाद और भूमंडलीकरण की वैशिक जर्मीं की तलाश के भिन्न भिन्न केंद्रबिंदु हैं जिनकी पड़ताल किये बिना इन्हें एक दूसरे संदर्भ से जोड़ना और अलग करके उसकी सांस्कृतिक पहचान को समझना मुश्किल है।

संदर्भ :

1. शर्मा, कुमुद, भूमंडलीकरण और मीडिया, पृष्ठ 13,
2. फ्रीडमैन, एल थॉमस, 'ए मेनिफेस्टो फॉर द फार्स्ट वर्ल्ड', दि न्यूयार्क टाइम्स, मैगजीन, 1999
3. यंग इंडिया, 1 जून 1921, (गांधी वाड़गमय, 20, 159).
4. बाशम.ए.एल. अद्भुत भारत शिव लाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, पृष्ठ 9, आगरा, 1993
5. शर्मा कुमुद, भूमंडलीकरण और मीडिया, पेज 14
6. स्टिग्लिट्ज, जोसेफ, ग्लोबलाइजेशन एण्ड इंटर्सिकंटेंट्स, पेंगुइन बुक्स इण्डिया, पृष्ठ 213, संस्करण 2002
7. आर्य अखिल विनय, साहित्य, भक्ति और दर्शन का वैभव, पृष्ठ 12, IGNITED.IN
8. आर्य अखिल विनय, साहित्य, भक्ति और दर्शन का वैभव, पृष्ठ 12, IGNITED.IN

लोक संवेदना के अप्रतिम कवि : राकेश 'कबीर'

“दुनिया एक बाजार थी आज भी बाजार है बिकते हैं माल और मजदूर/शहर की चौक पर रोज ही/इसी क्रय-विक्रय से ही तो है बाजार की रौनक भी।”¹

प्रस्तुत कविता के माध्यम से राकेश 'कबीर' ने बाजार के प्रकोप को दर्शाते हुए कहते हंर कि बाजार सबका मौल-भाव तय करने लगा है। अब बाजार में माल के साथ मजदूर, किसान, गांव-देहात आदि सब बिकने लगे हैं। वैसे वर्तमान दुनिया को साहित्य लेखन की दुनियां में एक नई क्रांति का दौर कहा जा सकता है। तकनीकी विकास ने दुनिया की सोच को खूब प्रभावित किया है। विगत दो-तीन दशकों में बाजार का प्रभाव गांव-देहात पर पड़ा है। चूँकि भारत में इंटरनेट शहर-कस्बों से होते हुए गाँव-ज्वार तक पहुँचने में कामयाब हुआ है। अतः इस इंटरनेट के माध्यम से अब बाजार लोगों तक पहुँचने में सफल हो रहा है।

राकेश 'कबीर' इक्कीसवीं सदी में पर्यावरण और लोक कवि के रूप में प्रतिष्ठित होने वाले सर्वाधिक साहसी और विद्रोही कवि हैं। लोक व पर्यावरण के अस्तित्व को बचाने के लिए वे लगातार साहस से लिख रहे हैं। मसलन उनका काव्य मात्र लोक-संवेदना के गहरे यथार्थ से जुड़ा हो ऐसा नहीं, उसमें प्रकृति के मनोहर चित्र और अन्य मुद्दे भी उभरे हैं। उनकी इस प्रतिष्ठा में उनकी सामाजिक, राजनीतिक और प्राकृतिक कविताओं के साथ-साथ लोक से सम्बंधित ज्यादातर कविताएँ देखने को मिलती हैं। अब तक उनकी तीन काव्य संग्रहों में पहला 'नदियाँ बहती रहेंगी' दूसरा 'कुंवरवर्ती कैसे बहे' और तीसरा 'नदियाँ ही राह बताएंगी' प्रकाशित हो चुकी है। इन तीनों संग्रहों में राकेश कबीर ने प्रकृति के साथ-साथ लोक व लोक में गरीब, शोषित, अभावग्रस्त आम आदमी की जीवन दशा का सटीक व मार्मिक चित्रण किया है। इसके साथ ही उन्होंने अपनी इच्छाओं, आकांक्षाओं, स्वन्जों, संघर्षों, वेदनाओं व लोक संवेदनाओं को

ब्रजेश प्रसाद (शोधार्थी)
प्रेसीडेंसी विश्वविद्यालय, कोलकाता

वाणी दी है और लोक के प्रति अपनी गहरी प्रतिबद्धता व्यक्त की है।

कविता संग्रह के साथ ही उनकी 'नदी' की तलाश में गद्य पुस्तक काफी चर्चित रही। जो वाणी प्रकाशन से प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में भी उन्होंने 'स्याही' नदी के साथ ही साथ नदी और सामाज की महत्ता पर प्रकाश डाला है। जिसमें छोटी नदी और उस नदी के किनारे बसे तमाम गाँव-देहात की संस्कृतियों व लोक परम्पराओं को अपनी लेखनी का विषय बनाया है। पुस्तक की भूमिका में कवि राकेश 'कबीर' लिखते हैं कि "गंगा, गोमती, यमुना, घघरा, और कृष्णा जैसी बड़ी नदियों और उनके सामने खड़ी पर्यावरणीय चुनौतियों से तो सभी परिचित होते हैं, लेकिन प्रत्येक जनपद में कुछ किलोमीटर लम्बाई में बहने वाली छोटी-छोटी नदियों के बारे में प्रायः कम चर्चा होती है, परन्तु मेरी चिंता सदैव से प्रकृति के लोकतांत्रिक स्वरूप को प्रदर्शित करती छोटी नदियों के पक्ष में रही है। जो हमारे खेतों और गाँवों तक पानी लेकर आती है।"

राकेश 'कबीर' का अपना स्वयं का जीवन भी सरल, सहज-सादगी से भरा और श्रमशील रहा है। आज प्रशासनिक अधिकारी होने के बावजूद भी उनके अंदर आम आदमी के प्रति प्रेम, संवेदना, मदद व लोकहित के प्रति लगाव कूट-कूट कर भरी हुई दिखाई देती है। आज ऐसे लोगों की संख्या बहुत कम है, जो अपनी प्रशासनिक दुनिया से भी समय निकाल कर आम-जन के लिए लिखते-पढ़ते रहते हैं। अतः राकेश 'कबीर' की काव्य-संवेदना जहाँ जन-जीवन के साथ पूरी निष्ठा तथा ईमानदारी से जुड़ती है, वहीं व्यक्तिगत संवेदना के स्वरूप भी उनकी कविताओं में देखी जा सकती है।

राकेश 'कबीर' ज्यादातर कविताएँ लोक की छोटी नदियों और उसके अस्तित्व को बचाने

के लिए लिखते हैं। लोक की छोटी-छोटी नदी उनकी कविताओं का केन्द्रीय विषय है। जैसे सरायन, बेचारी नदियाँ, सूखती नदियाँ, नदियाँ बहती रहेंगी, चंबल, उलटी धार, नदियाँ ही राह बताएंगी, हताश पानी, नदियाँ, एक अर्जी नदी के नाम आदि। राकेश 'कबीर' अपनी काव्य संग्रह की भूमिका में लिखते भी हैं कि 'नदियाँ जीवनदायिनी होती हैं, अतः लोक की छोटी नदियों को बचाने की जिम्मेदारी हम सब की है। नदियाँ हैं तो हर तरफ खूबसूरती है, हर तरफ जीवन है।'

लोक जीवन में व्याप्त विषमताओं, विसंगतियों पर राकेश 'कबीर' की पैनी दृष्टि रहती है। जो उनकी लगभग कविताओं में दिखाई देती है। आर्थिक विपन्नता, भूमिहीन मजदूरों के जीवन, किसान और उसकी समस्याओं का चित्रण कविता को मार्मिक बनाती है। 'एक किसान का मरना' कविता में वे लिखते हैं— जब एक किसान अपने खेत में जेठ की 'लू' भरी दुपहरी में बकरियां चराते हुए फटे पलास्टिक के जुते पहने झीने गंदे कूरते में तडप—तडपकर मर जाता है। तो वह अकेला नहीं मरता बल्कि सारी इंसानियत मर जाती है सारी सभ्यता, सारी संस्कृति मर जाती है और एक राष्ट्र के रूप में हम सब मर जाते हैं।

राकेश 'कबीर' अपने नाम में 'कबीर' जोड़ते हैं। जो उनकी साहस, फक्कडपन और अक्खडपन को दर्शता है। वे क्रांतिकारी कवि कबीर की गौरवमयी परंपरा की महत्वपूर्ण कड़ी हैं। आज बिना किसी भय के राकेश 'कबीर' अत्यंत निर्ममतापुर्वक अपने समय की अव्यवस्था और आज की व्यवस्था पर प्रहार कर रहे हैं। यह प्रहार शासन लेकर प्रशासन तक, शहर से लेकर गांव तक दिखाई देता है। रामजी यादव लिखते हैं 'राकेश कबीर की कविताओं में ऐसे ही भयावक प्राणियों के हजारों छोटे-छोटे संस्करण दिख रहे हैं, जो अपने स्तर पर समस्त प्रकृति और लोक को चर रहे हैं। लेकिन कवि अपने भरोसे पर कायम है कि नदियाँ भले आज विलोपित हो रही हैं, लोक जीवन भले खत्म हो रहा है, लेकिन कल वे अपनी राह खोज

निकालेंगी। यही नहीं, वे मानव जगत को जीने का शजर भी सिखाएंगी।'

उनकी कविताओं में लोक जीवन का जितना प्रमाणिक, विश्वसनीय और यथार्थ चित्रण देखने को मिलता है, उतना इककीसवीं सदी के अन्य कवियों के यहाँ कम देखने मिलता है। उनकी कविताओं में केवल देखा हुआ यथार्थ नहीं है, बल्कि जीवन की कटु सच्चाइयों का पुलिंदा भी है। यही कारण है कि उनकी रचनात्मकता मानवीय संवेदना के धरातल पर मानव—चेतना को झकझोरती भी है। खलियान, महंगाई, विकास तुम न आना, गिलावा आदि ऐसी कईयों कविताएँ लोक के व्यापक यथार्थ को दर्शाती हैं। 'उलटी धार' में कवि लिखते हैं—'जब खेत शहर बन जाते हैं/ और उसमें सभी लोग बस जाते हैं/ तब फसलें नहीं घरों की फर्श सिंची जाती है/ खेतों को सिंचने आई कल की नहर/ गंदा नाला बन जाती है।'²

राकेश 'कबीर' की कविताओं की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे लघु से लघु, तुच्छ से तुच्छ विशयों पर लिखने वाले कवि हैं। उन्हें पीड़ित जनता, असहाय जन के कष्ट, दूषित हो रहे पर्यावरण और खत्म होती लोक—संस्कृति सर्वाधिक प्रभावित की है। कोरोना काल में लोगों की दयनीय स्थिति को देखते हुए अपनी अधिकारी ड्यूटी को निभाते हुए भी उन्होंने तमाम लोगों की मदद की। इस तरह का कार्य कवि हृदय वाला व्यक्ति ही कर सकता है। शासन—प्रशासन और राजनीति रवैया को बयां करते हुए अपनी कविता 'ये पत्थर के शहर' में वे लिखते हैं—'सन्नाटे को तोड़ते/ कभी—कभी कुछ नरमुंड/ लाठियों—गालियों के डर से/ इधर—उधर भागते झुंड/ खोजते हैं रोटी, रास्ता और घर।'³

इस तरह की मार्मिक पंक्तियों से मन कौंध उठता है। उपेक्षित मानव जन के प्रति मन गहरी संवेदना अभिव्यक्त करने लगता है। देश के तमाम गरीब, असहाय, किसान—मजदूर आदि की वास्तविक स्थिति महज इन कुछ वर्षों में देखने को मिली है। रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ, भूख आदि कईयों परेशानियों का शिकार यह वर्ग

बनता जा रहा है। इस तरह के सामाजिक परिवेश के प्रति कवि की कविताओं में गहरी संवेदना देखने को मिलती है। इन तमाम विसंगतियों और अमानवीय परिस्थितियों के बावजूद कवि हताश नहीं हैं। बल्कि कवि को अब भी मानवता के भविश्य में गहरी आस्था है। उन्हें पूरा भरोसा है कि एक दिन मानवीय, आत्मीयता, सरलता और स्वाभिकता को बचाया जा सकता है। यह भरोसा भी उन्हें लोक पर ही है। अतः लोक ही मानवता और संस्कृतियों को बचाने में सफल हो सकेगा। विकास के इस युग में जब किसान के खेतों से सड़कें, हाइवे पर रनवे बन रहे हैं, किसान के खेत कम हो रहे हैं, छोटी नदियों के अस्तित्व खत्म हो रहे हैं, कुंवा—तालाब और पेड़—पौधों की कटाई—छटाई हो रही है आदि सब देख कवि मन आहात होता है। उनको इसकी गहरी चिंता सताती है। मसलन वे ऐसे विकास के आतंक से अत्यंत भयभीत हैं। क्योंकि वे जानते हैं कि विकास की गाड़ी जितनी तेज चलेगी, प्रकृति का विनाश उतना तेजी से होगा। अपनी कविता 'विकास तुम न आना' में वे लिखते हैं—‘तुम आओगे तो बंजर हो जाएगी/ हमारे पुरखों की हरी—भरी धरती/ तुम आओगे तो वीरान हो जायेंगे/ हमारे पहरेदार हरे—भरे जंगल/ तुम आओगे तो बेघर हो जायेंगे / तमाम निर्दोश आजाद ख्याल चिरई—चुरुमुन।’⁵

इस तरह देखा जा सकता है कि कवि विकास की तेजी से से भयभीत है। उसे उन तमाम बेजुबान पशु—पक्षी, पेड़—पौधे, नदी—तालाब व हवा—बतास की चिंता है। जिनका अस्तित्व आज खतरे में है। डॉ. संतोष पटेल लिखते हैं कि 'राकेश 'कबीर' समकालीन चेतना के एक संजीदा कवि हैं, जिनकी कविताओं में नदियाँ, पहाड़, झील—झरने, ताल—तलैया, वृक्ष—जंगल का दृश्य प्रमुखता से उपस्थित हुई है। आज विश्व को जो चिंता ग्लोबल वार्मिंग और प्रदुशण से हो रही है, वही राकेश 'कबीर' की कविताओं का केंद्र में है। राकेश 'कबीर' की कविताओं को पढ़ने के बाद ऐसा लगता है कि कवि मन गाँव—देहात की जिंदगी में वापस लौटने के

लिए आतुर है। यह लोक जीवन के प्रति प्रेम ही तो है कि कवि को कस्बों—शहरों की चकाचौंधुनिया बिलकुल नहीं भाती। बल्कि इस चकाचौंधुनिया में कसमसाती जिंदगी से कवि मन व्याकुल हो उठता है। इसी बैचनी को बयां करते हुए अपनी कविता 'कस्बा' में कवि लिखते हैं—‘बिजली खेले आँख—मिचौली/ सड़ी गर्मी में चिपचिपाती है जिंदगी/ लगता है सदियों गुजर गई कस्बों के कुंचों में/ अब गाँव या मुकमल शहर ले चल रे जिंदगी।’⁶

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि राकेश 'कबीर' लोक संवेदना के सच्चे धरोहर हैं, जिन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से लोक जीवन की छोटी—छोटी घटनाओं को सटीक तरीके से प्रस्तुत करने की कोशिश की है। उनका काव्य लोकजीवन की आत्मीयता, सहजता और मानवीयता से प्रभावित दिखाई पड़ता है। इस तरह राकेश 'कबीर' की कविताओं में लोक जीवन की अभिव्यक्ति का स्वर प्रमुखता से उजागर हुई है। निश्चय ही कवि अपनी काव्य—यात्रा में अपने जीवनानुभवों को शब्दबद्ध कर लोक जीवन के अस्तित्व 28व संस्कृतियों को बचाने का सार्थक प्रयास किये हैं। उनकी कविताओं में गाँव—देहात और लोक जन के लिए गहरी आत्मीयता को सहज रूप में देखा जा सकता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. अग्रवाल, बसुदेवशरण, 'लोक प्रत्यक्ष 'दर्शन' लेख सम्मलेन पत्रिका' लोक संस्कृति विषेशांक
2. उपाध्याय, कृष्णदेव, 'लोक—साहित्य की भूमिका' साहित्य भवन, इलाहाबाद, संस्करण— 2013
3. उप्रेती, डॉ. कुंदनलाल, 'लोक—साहित्य के प्रतिमान' भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़, संस्करण— 2000
4. गुप्त, महेश (डॉ.), 'लोक साहित्य का शास्त्रीय अध्ययन' नेहा प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण— 2008
5. दुबे, श्यामसुन्दर, 'लोक परंपरा, पहचान एवं प्रवाह' राधाकृष्ण प्रकाशन, संस्करण— 2011
6. जनकृति अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका—अंक 67, नवंबर, 2020

सबसे नीच काम

एक बेसहारा और मजबूर औरत
अपने जिस्म को बेचकर
परिवार को पालती है
बच्चे को पढ़ाती—लिखाती है
इस काम को नीच नहीं मानता मैं।
सबसे नीच काम तो वो है
जब एक इज्जतदार बाप
अपनी मूछों को ऐंठते हुए
अपने बेटे की बोली लगवाता है
और उसे बेचकर अपनी जेब
और घर को भरता है
और अपनी शान को ऊंचा समझता है।
सबसे नीच काम तो वो है
जब एक पढ़ा—लिखा लड़का
अपने आप को
ऊँची कीमतों पर बिकने पर
और एक बेटी को धन के लिए
प्रताड़ित करने पर
गर्व महसूस करता है।
सबसे नीच काम तो वो है
जब एक बेटी के पिता को
चंद पैसों के लिए
भरी सभा में
रोने—गिडगिडाने के लिए
मजबूर किया जाता है
और उसकी बेटी को
ससुराल के लोगों द्वारा
साथ ले जाने से इनकार किया जाता है।
सबसे नीच काम ये नहीं है कि
जब चंद सम्पत्तियों के लिए
एक बेटी को जला दिया जाता है

बल्कि सबसे नीच काम तो यह है कि
इन सब कुकृत्यों में
एक बेटी भी शामिल होती है।

— विपुल कुमार रवि

छात्र, महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी
विश्वविद्यालय, वर्धा

• • • • •